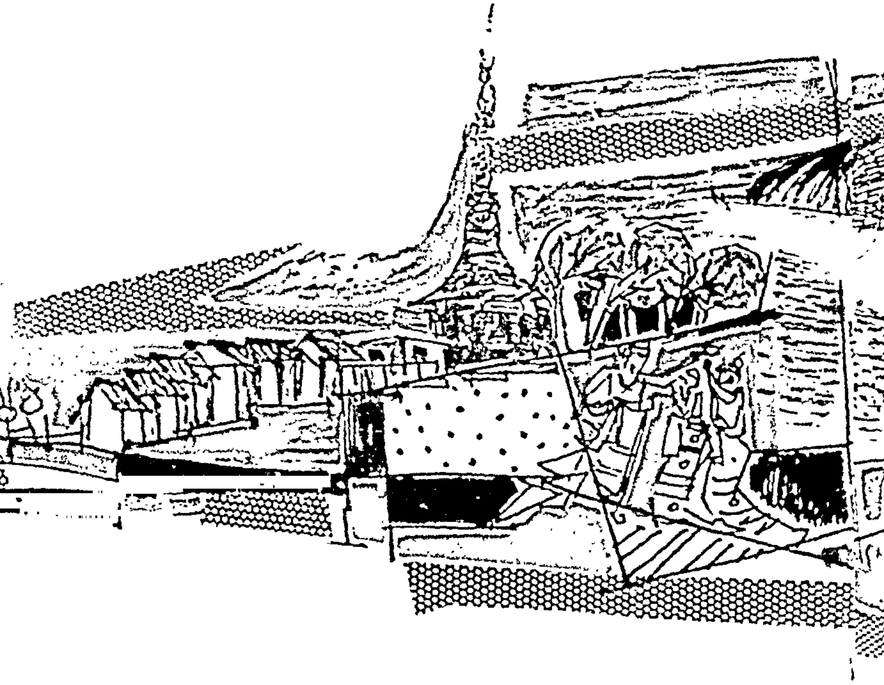

वर्दी

आनन्द जैन

क्रम

1. पगोडों का देश 7
2. बर्मा की कहानी 15
3. राजधानी और नगर 22
4. प्रमुख पगोडा 28
5. इतिहास की रूपरेखा 33
6. सुन्दर काचिन और शान क्षेत्र 46
7. धर्म और समाज 55
8. महिलाओं की स्थिति 61
9. साहित्य और कला 66
10. प्रशासन और अर्थ-व्यवस्था 74
11. शिक्षा और खेल-कूद 82
12. स्वास्थ्य और समाज-कल्याण 88
13. तीन बड़े नेता 95
14. भारत-बर्मा सम्बन्ध 101

श्वेदगों पगोडा, रं

1

पगोडों का देश

भारत के असम राज्य की सीमा से लगा देश बर्मा या ब्रह्मा पगोडों का देश कहलाता है। घंटीनुमा बौद्ध स्तूपों को बर्मी लोग पगोडा कहते हैं। बर्मा के प्रत्येक गांव तथा नगर में अनेक पगोडा होते हैं और पगोडा की ओट में बर्मा का सारा सामाजिक जीवन चलता है। प्रसिद्ध यूरोपीय यात्री मार्कोपोलो ने लिखा था कि "अकेले पागान नगर में 40 लाख पगोडा हैं।" पागान नगर मध्य बर्मा में इरावदी नदी के पूर्वी तट पर बर्मी राजाओं की राजधानी था, लेकिन मंगोल कुबलाई खान के आक्रमण के बाद यह नगर बर्बाद हो गया और आज भी पागान के खंडहरों में पांच हज़ार से अधिक पगोड़ा गिने जा सकते हैं।

बौद्ध साहित्य में ब्रह्मा देश का सबसे पहला ज़िक्र ईसा की पहली शताब्दी में पाया जाता है। भारतीय पहली शताब्दी में तेलंगाना और उड़ीसा के तटों से जलपोतों से बर्मा के दक्षिणी तट पर गए, व्यापार किया और फिर वहीं बस भी गए। यह क्रम कई शताब्दियों तक अबाध चलता रहा।

बर्मा में सबसे प्राचीन शिलालेख पांचवीं शताब्दी के मिले हैं। ये लेख गोवा के तट की कदम्ब लिपि में हैं। बाद में आठवीं शताब्दी के शिलालेख पल्लव भाषा में हैं जो भारत के पूर्वी तट पर वर्तमान

आन्ध्र प्रदेश में प्रचलित थी। इतिहासकारों का कहना है कि भारत के तेलंगाना प्रदेश के लोगों ने दक्षिण बर्मा में पीगू साम्राज्य स्थापित किया था, जो 1757 तक टिका रहा। लगभग चार लाख तेलंग लोग अब भी वर्मा में हैं, जो मुख्य रूप से मौलमीन के आस-पास रहते हैं। यह निश्चित है कि इन तेलंग लोगों ने ही बर्मा को धर्म, संस्कृति और भाषा दी थी। उन दिनों भारत में बौद्ध धर्म की हीन-यान शाखा का केन्द्र कांजीवरम् में था और उसीके प्रचारकों ने वर्मा को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया।

वर्मा की अधिकांश आबादी मंगोल जाति की है, लेकिन उनकी परम्परा तथा लोक-कथाओं में कहीं भी तिव्वत, भारतीय आदि का ज़िक्र नहीं मिलता। सभी लोक-कथाएं भारतीय हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार जी० ई० हर्व के अनुसार वर्मा की आदि-कथाएं बताती हैं कि वर्मी लोग भगवान बुद्ध के जाति-भाई हैं और आरम्भ में उत्तर भारत में रहते थे। सभी वर्मी नगरों और ग्रामों के दो नाम होते थे —एक भारतीय और दूसरा स्थानीय। जैसे पीगू का दूसरा नाम 'उस्सा' है जो 'उड़ीसा' का अपभ्रंश है। उस नगर के लोग उड़ीसा से वर्मा में आए होंगे और उन्होंने अपने नगर का नाम उस्सा रख लिया होगा।

भारत के लोग असम होकर स्थल-मार्ग से तथा समुद्र से होकर वर्मा के दक्षिणी तट पर गए थे। उन्होंने थाटोन, प्रोम, पीगू, रंगून तथा अन्य नगरों के आस-पास अपनी वस्तियां वसाई थीं, जो वाद में चलकर नगर राज्य वने। आरम्भ में वर्मा में आने वाले भारतीय

सागाइंग के उमिन थोंज़ पगोडा (तीस गुफाओं का पगोडा) में बुद्ध मूर्तियों की कतार

यह खवर जव राजा तक पहुंची तो उसने भद्रदेवी को दरवार में वुलवाया और आदेश दिया कि उसे पागल हाथियों के सामने छोड़ दिया जाए, जिससे हाथी उसका काम तमाम कर दें। भद्रदेवी को पागल हाथियों के सामने ले जाया गया। भद्रदेवी ने भगवान वुद्ध का जयघोष किया और कोई हाथी उसकी ओर नहीं वढ़ सका। तव अनुचर फिर राजा के पास गए। राजा ने आदेश दिया कि फूस की चिता वनाकर भद्रदेवी को भस्म कर दिया जाए। लेकिन चिता की आग में भी भद्रदेवी न जली। अनुचर फिर राजा के पास गए। इस वार राजा ने भद्रदेवी के सात टुकड़े कर देने का आदेश दिया।

लेकिन जव हत्यारे भी भद्रदेवी को काट न पाए तव राजा को महान आश्चर्य हुआ। उसने अपना धर्म छोड़कर वौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और भद्रदेवी को अपनी पटरानी वनाया।

तेलंग वीर कुन अथा

पीगू के तेलंग वौद्ध राजा थमल ने अपने छोटे भाई विमल को अपना वारिस नियुक्त किया और तक्षशिला में विद्याध्ययन के लिए भेज दिया। इसके वाद राजा थमल ने एक करेन सुन्दरी से विवाह किया और कुछ वर्षों में विमल को भूल ही गया।

विमल ने अपना अध्ययन पूरा किया और तक्षशिला से पीगू लौटा। थमल ने उसका स्वागत नहीं किया। इससे विमल को क्रोध आया और उसने राजा थमल को मार डाला। विमल ने थमल की रानी से पैदा हुए वच्चे को भी मार डालने का आदेश दिया, लेकिन रानी ने वच्चे को नगर के वाहर भैंसों के झुंड में छिपा दिया। वच्चा भैंसों के वीच पला और वड़ा हुआ।

जव राजकुमार 16 साल का हुआ तव राज्य पर आक्रमण

हिन्दू थे और वे अपने साथ ब्राह्मण पण्डितों को ले गए थे। हिन्दू लोग ईसा से पूर्व की शताब्दियों में वर्मा गए थे। इसी कारण आज जो बौद्ध पगोडे हैं, उनका इतिहास ईसा-पूर्व से शुरू होता है। आरम्भ में वे हिन्दू मन्दिर थे। बाद में तीसरी शताब्दी से भारतीय बौद्ध बड़ी संख्या में जाकर वर्मा में बसे और उन्होंने पहले के इन हिन्दू मन्दिरों को बौद्ध मन्दिरों में परिवर्तित किया। इस बीच जैसे भारत में हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म में संघर्ष हुआ, उसी प्रकार वर्मा में बसे हिन्दुओं तथा बाद में गए बौद्धों में संघर्ष हुआ। इस सघर्ष की अनेक कहानियां वर्मा में प्रचलित हैं। इनमें तेलंग वीरांगना भद्रदेवी की कहानी अत्यन्त लोकप्रिय है। कहानी इस प्रकार है।

वीरांगना भद्रदेवी

पीगू का राजा तिस्सा बौद्ध धर्म के विरुद्ध था। बौद्ध प्रतिमाओं को तुड़वाकर फिकवा देता था। उसने अपने राज्य में केवल हिन्दू धर्म की उपासना की इजाज़त दी थी।

एक व्यापारी की पुत्री भद्रदेवी बौद्ध धर्म की अनुयायी थी। दस साल की उम्र से ही वह अपने माता-पिता के साथ बुद्ध-प्रवचनों को सुनने जाया करती थी। जब वह 16 साल की हुई, एक दिन नदी में स्नान करते समय उसका हाथ एक बौद्ध प्रतिमा पर पड़ा। उसने प्रतिमा को उठा लिया। वह प्रतिमा सोने की थी और चमक रही थी। उसने अपनी दासी से पूछा कि प्रतिमा को किसने नदी में फेंका। दासी ने कहा—"राजा तिस्स प्रतिमाओं को नदी में फिकवा देता है और जो व्यक्ति भगवान बुद्ध की पूजा करता है, उसे मरवा डालता है।" भद्रदेवी ने प्रतिमा को जल से धोया और नदी के तट पर उस प्रतिमा के लिए छोटा-सा पगोडा बनवाया।

बात यह भी स्पष्ट होती है कि भारतीयों ने बर्मा में विभिन्न कबीलों की स्त्रियों से विवाह किया था और फिर वहां के लोगों में घुल-मिल गए थे।

बर्मा का लिखित इतिहास 11वीं शताब्दी से शुरू होता है और इससे पूर्व की बातें केवल लोक-कथाओं में मिलती हैं। 800 ईसवी के चीनी लेखों में बर्मा को प्यू देश कहा गया है और लिखा है कि प्यू देश में 18 प्रान्त और 9 बड़े नगर थे। राजा प्यू की राजधानी प्रोम नगर में थी। यह नगर इरावदी डेल्टा से कुछ उत्तर में नदी के तट पर है। ये राजा भारतीयों के वंशज थे और मुर्दों को जलाते थे तथा उनकी राख घड़े में भरकर उसके मकबरे बनाते थे। एक ऐसे घड़े पर आठवीं शताब्दी की तारीख पड़ी है और राजा विक्रम का नाम लिखा हुआ है। प्रोम के प्यू राजा दत्तपोंग के बारे में अनेक दंतकथाएं प्रचलित हैं।

ब्रिटिश इतिहासकार जी० ई० हर्व के अनुसार प्यू राज्य का अन्त आठवीं या नवीं शताब्दी में हो गया था। प्यू लोगों का अब तो नामो-निशान मिट गया है लेकिन भाषा किसी न किसी रूप में 13वीं शताब्दी तक बनी रही थी।

लगता है कि प्यू राज्य के विघटन पर बर्मा अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया तथा विभिन्न जातियों और कबीलों के शासन कायम हुए। उत्तर-पूर्वी भाग 11वीं शताब्दी तक युन्नान के नान-चाओ साम्राज्य के अंग बने रहे। नानचाओ के लोग चीनी शान थे और उन्होंने तिब्बत से बौद्ध धर्म ग्रहण किया था।

प्रोम में प्यू राजवंश के पतन के बाद राज्य के प्रमुख परिवार उत्तर की ओर पागान में चले गए और वहां 19 ग्रामों का एक नगर बसाया और जल्दी ही वह नगर देश का प्रमुख केन्द्र बन गया। सन्

हुआ। आक्रमण उन हिन्दुओं ने किया था जिन्हें तेलंग बौद्धों ने पराजित करके अपना शासन कायम किया था। आक्रमणकारियों का नेता लम्बा नामक एक सरदार था। लम्बा ने एक पत्र भेजकर राजा विमल को चुनौती दी कि कोई बौद्ध यदि उसे मल्लयुद्ध में हरा दे तो वह आक्रमण रोककर लौट जाएगा। राजा विमल ने मल्लयुद्ध के लिए योद्धाओं की तलाश की, लेकिन कोई न मिला।

इसी बीच एक शिकारी ने भैंसों के झुंडों में एक युवक को देखा। उसने लौटकर अपनी पत्नी से उस वीर युवक की बात कही। पत्नी ने शिकारी को सलाह दी कि वह राजा विमल को युवक के बारे में समाचार दे, तो उसे इनाम मिलेगा क्योंकि राजा वीर की तलाश में है। शिकारी से खबर मिलते ही राजा विमल अपने मंत्रियों को उस वीर को लेने भेजा। जैसे ही वह युवक दरबार में आया, राजा विमल ने उसे पहचान लिया और मंत्रियों को बताया कि यह युवक तो मेरा भतीजा है। राजा ने अपनी करनी का प्रायश्चित किया और युवक को राजगद्दी देने का वायदा कर लम्बा से लड़ने की बात कही। युवक मान गया लेकिन उसने मल्ल-युद्ध करने से पूर्व सात दिन का समय मांगा। युवक जंगल में गया और उस भैंस से, जिसने उसे अपने बच्चे की भांति पाला था, लड़ने का आदेश प्राप्त किया।

सात दिन बाद युवक पीगू लौटा और उसने मल्लयुद्ध में लम्बा को परास्त कर दिया। इसकी खुशी में युवक के नाम पर राजा ने थाटोन ज़िले में कुन अथा पगोडा बनवाया। बाद में युवक कुन अथा राजा बना।

इस कहानी से स्पष्ट है कि बर्मा में कई शताब्दियों तक हिन्दू भारतीयों तथा बौद्ध भारतीयों में संघर्ष चलता रहा। इससे दूसरी

2

वर्मा की कहानी

वर्मा 40 साल तक ब्रिटिश भारत का एक प्रान्त रहा है और 1937 में ही यह अलग देश बना। 1948 में उसे अंग्रेज़ों से आज़ादी मिली और तब से यह समाजवादी गणराज्य है।

ढाई करोड़ की आबादी वाला वर्मा उत्तर में भारत, तिब्बत, चीन के सीमा-बिन्दु से दक्षिण में मलयेशिया के तट तक फैला हुआ है। वर्मा की पश्चिमी सीमा भारत से, उत्तरी तथा पूर्वी चीन से तथा दक्षिणी-पूर्वी थाईलैण्ड से मिलती है। दक्षिण में अराकान से तनासिरम तक 1200 मील लम्बा बंगाल की खाड़ी का तट है।

भौगोलिक दृष्टि से वर्मा के तीन भाग हैं—(1) पश्चिमी पहाड़, (2) पूर्वी शान पठार, और (3) बीच का मैदानी भाग। इरावदी, चिंडविन, सितांग और सालवीन नदियां वर्मा को जीवन-दायिनी हैं। इरावदी नदी के मैदान को मुख्य वर्मा कहते हैं। इरावदी तिब्बत से आती है और वर्मा में एक हज़ार मील बहकर रंगून के पास बंगाल की खाड़ी में गिरती है। इरावदी अपने तट के दोनों ओर मीलों तक फैले खेतों को पानी देती है और यह उत्तर-दक्षिण के लिए मुख्य जल मार्ग है। इसमें 900 मील तक स्टीमर चल सकते हैं।

इरावदी नदी के तट पर ही वर्मी राजाओं की राजधानियां

849 में इन 19 ग्रामों के प्यू मुखिया पिनका ने इन ग्रामों के चारों ओर दीवार बनाकर पागान को विशाल और सुन्दर नगर का रूप दे दिया।

प्रोम के प्यू लोग हिन्दू धर्म तथा बौद्ध धर्म के मिले-जुले रूप को मानते थे। पागान में आने पर उन्होंने असम और तिब्बत के स्थल मार्ग से आए बौद्ध धर्म के भिन्न रूप को देखा। इस धर्म के पुजारी 'आरि' कहलाते थे और यह दावा करने थे कि उनकी पूजा से सभी पापों से मुक्ति पाई जा सकती है। बौद्ध धर्म का यह रूप एक विशिष्ट प्रकार का था। आरि लोग नाग देवता तथा बुद्ध भगवान की पूजा करते थे। इसी कारण कुछ प्राचीन पगोडों में नाग देवता की मूर्तियां भी मिलती हैं।

सन् 960 के लगभग पागान का राजा न्यांग सवराहन था और वह आरि पुजारियों के प्रभाव में था। उसके एक दरबारी ने उसे हटाकर गद्दी छीन ली, लेकिन बाद में सवराहन के पुत्र ने गद्दी पर फिर से अधिकार कर लिया। लेकिन वह भी अधिक समय तक राजा नहीं रह पाया। उसके पिता को अपदस्थ करने वाले दरबारी कुनशा क्योंग प्यू के पुत्र अनव्रहत ने उसे मारकर सन् 1044 में अपना राजवंश कायम किया। उसके शासन से बर्मा का लिखित इतिहास शुरू होता है। राजा अनव्रहत ने वैशाली की राजकन्या पंचकल्याणी से विवाह किया था।

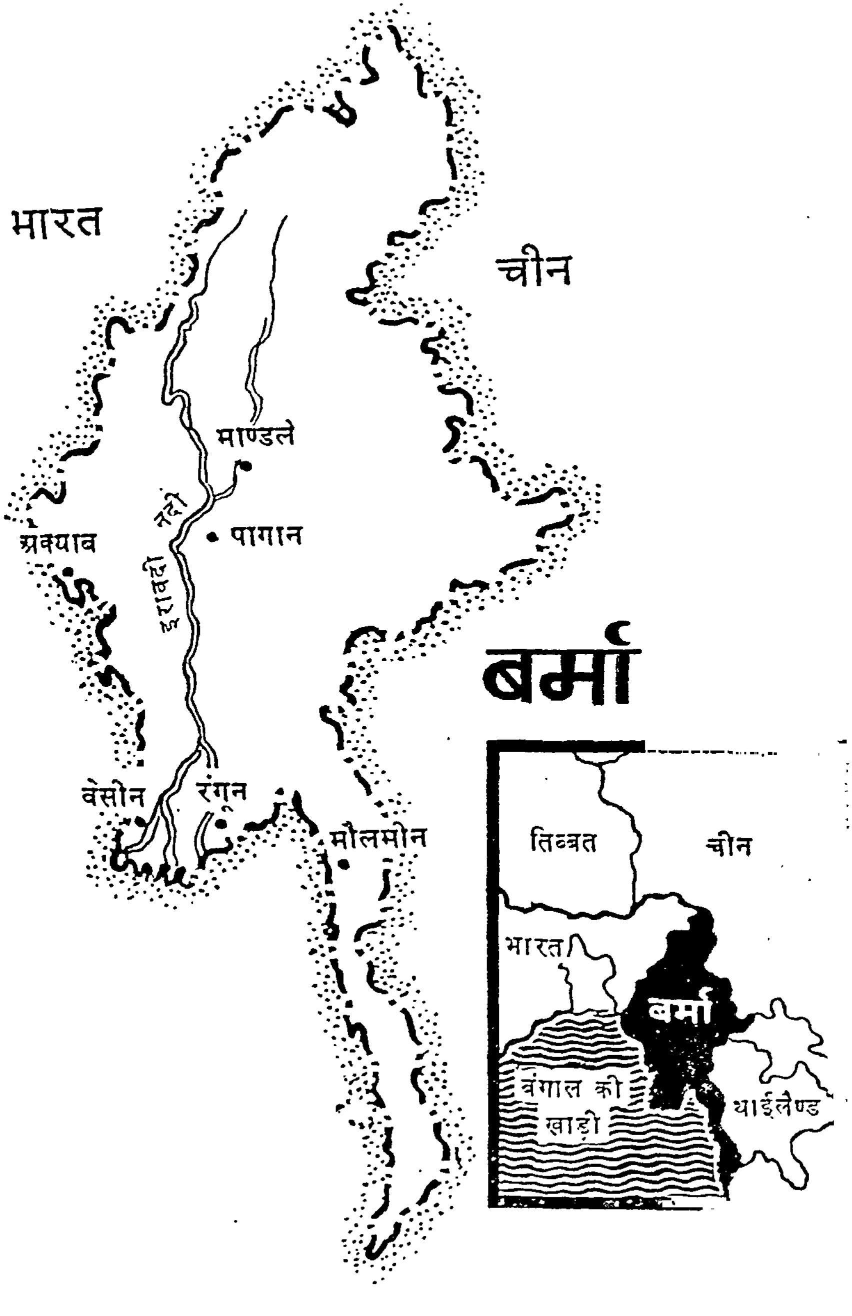
भारत
चीन
माण्डले
पागान
इरावदी नदी
अक्याब
बेसीन
रंगून
मौलमीन
बर्मा
तिब्बत
चीन
भारत
बर्मा
बंगाल की खाड़ी
थाईलैण्ड

रहीं। उत्तर में तागोंग से दक्षिण में रंगून तक एक दर्जन नगर समय-समय पर बर्मी राजाओं की राजधानी रहे हैं। इनमें पागान और मांडले अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

बर्मा में तीन मुख्य ऋतुएं हैं—वर्षा, शीत और गर्मी। वर्षा ऋतु मई मास के मध्य से अक्तूबर के मध्य तक होती है और 200 इंच तक वर्षा पड़ती है। शीत ऋतु नवम्बर से जनवरी तक तथा गर्मी का मौसम फरवरी से अप्रैल तक होता है। वर्षा ज़्यादा होने से बर्मा में तरह-तरह के पेड़-पौधे और जानवर होते हैं। यहां के जंगलों की लकड़ी तो दुनिया की सबसे बढ़िया इमारती लकड़ी मानी जाती है और प्रायः सभी देशों को भेजी जाती है। अधिक वर्षा वाले देशों में चावल ज़्यादा होता है और बर्मा हर साल लाखों टन चावल का निर्यात करता है।

उत्तरी बर्मा के जंगलों में हाथी बहुतायत से पाए जाते हैं। हाथी को पालकर उससे जंगलों में लकड़ी ढोने का काम लेते हैं। हाथी लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठे लादकर इरावदी और उसकी सहायक नदियों के तट पर लाते हैं तथा फिर उन्हें नदी में बहा दिया जाता है। समुद्र तट पर पहुंचने पर उन्हें जहाज़ों में लादकर विदेशों को भेजा जाता है।

बर्मी लोग मंगोल जाति के हैं और उनके पूर्वज तिब्बत तथा मध्य एशिया से समय-समय पर आए थे। इनमें तीन उपजातियों की बहुतायत रही: मोन-ख़मेर, तिब्बती-बर्मन और थाई-चीनी।

सबसे पहले मध्य एशिया से जो लोग आए वे बर्मा में मोन कहलाए और इण्डोचीन में ख़मेर। मोन लोग अब भी दक्षिण बर्मा में दिखाई पड़ते हैं। फिर तिब्बत से बहुत-से लोग आए जो चिन, काचिन, नागा, गौरी, लोलो आदि कहलाए। 13वीं और 14वीं

जवाहरात की खानें माण्डले के उत्तर में हैं और कई करोड़ रुपये के मूल्य के कीमती पत्थरों का हर वर्ष निर्यात किया जाता है।

माण्डले पहाड़ी को जाने वाली सीढ़ियों पर बनी सिंह-मूर्तियों में से एक

शताब्दी में चीन के युन्नान प्रान्त की ओर से चीनी-थाई जाति के लोग आए और अब इनकी उप-जातियां हैं करेन, शान आदि।

14वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक मध्य एशिया, तिब्बत और युन्नान से आने वाले सभी लोग एकता-सूत्र में बंधकर बर्मी कहलाए जाने लगे। केवल सुदूर पहाड़ी क्षेत्रों के कुछ आदिवासी मुख्य बर्मी विकास-धारा से अलग रह गए। भारत से आए बौद्ध धर्म ने सभी जातियों के बर्मी लोगों को एकता के सूत्र में बांधने में सबसे ज्यादा योग दिया।

'बर्मन' शब्द का पहली बार उल्लेख प्रोम नगर के पास प्राप्त 8वीं शताब्दी के एक शिलालेख में मिलता है। इससे लगता है कि भारत में इस क्षेत्र को 'बर्मन' या ब्रह्मदेश कहा जाता था और जो भारतीय प्रोम आए उन्होंने इस देश को 'बर्मन' कहना शुरू किया। उसीसे बिगड़कर फिर 'बर्मा' हो गया।

देश की ढाई करोड़ आबादी में डेढ़ करोड़ बर्मी हैं और 20 लाख करेन, 17 लाख शान, 8 लाख चिन और 3 लाख काचिन हैं। इनके अलावा अन्य दर्जनों अल्पसंख्यक जातियों के लोग हैं।

बर्मा मुख्य रूप से कृषि-प्रधान देश है, लेकिन अब औद्योगीकरण तेजी से किया जा रहा है। 1969 में बर्मा ने 15 लाख टन चावल, डेढ़ लाख क्यूबिक टन इमारती लकड़ी और बड़ी मात्रा में कपास, दालें, रबर, खली, नमक और मोम का निर्यात किया था। मुख्य उद्योग चावल कूटने और लकड़ी चीरने के कारखाने हैं।

बर्मा ने खनिज तेल-उद्योग को बढ़ाया है। इस समय 4,400 कुओं से तेल निकाला जा रहा है। दो तेल-शोधक हैं। 16 करोड़ गैलन वार्षिक उत्पादन है।

बर्मा में कीमती पत्थर बड़ी संख्या में मिलते हैं। हीरा और

जवाहरात की खानें माण्डले के उत्तर में हैं और कई करोड़ रुपये के मूल्य के कीमती पत्थरों का हर वर्ष निर्यात किया जाता है।

माण्डले पहाड़ी को जाने वाली सीढ़ियों पर बनी सिंह-मूर्तियों में से एक

शताब्दी में चीन के युन्नान प्रान्त की ओर से चीनी-थाई जाति के लोग आए और अब इनकी उप-जातियां हैं करेन, शान आदि।

14वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक मध्य एशिया, तिब्बत और युन्नान से आने वाले सभी लोग एकता-सूत्र में बंधकर बर्मी कहलाए जाने लगे। केवल सुदूर पहाड़ी क्षेत्रों के कुछ आदिवासी मुख्य बर्मी विकास-धारा से अलग रह गए। भारत से आए बौद्ध धर्म ने सभी जातियों के बर्मी लोगों को एकता के सूत्र में बांधने में सबसे ज़्यादा योग दिया।

'बर्मन' शब्द का पहली बार उल्लेख प्रोम नगर के पास प्राप्त 8वीं शताब्दी के एक शिलालेख में मिलता है। इससे लगता है कि भारत में इस क्षेत्र को 'बर्मन' या ब्रह्मदेश कहा जाता था और जो भारतीय प्रोम आए उन्होंने इस देश को 'बर्मन' कहना शुरू किया। उसीसे बिगड़कर फिर 'बर्मा' हो गया।

देश की ढाई करोड़ आबादी में डेढ़ करोड़ बर्मी हैं और 20 लाख करेन, 17 लाख शान, 8 लाख चिन और 3 लाख काचिन हैं। इनके अलावा अन्य दर्जनों अल्पसंख्यक जातियों के लोग हैं।

बर्मा मुख्य रूप से कृषि-प्रधान देश है, लेकिन अब औद्योगीकरण तेज़ी से किया जा रहा है। 1969 में बर्मा ने 15 लाख टन चावल, डेढ़ लाख क्यूबिक टन इमारती लकड़ी और बड़ी मात्रा में कपास, दालें, रबर, खली, नमक और मोम का निर्यात किया था। मुख्य उद्योग चावल कूटने और लकड़ी चीरने के कारखाने हैं।

बर्मा ने खनिज तेल-उद्योग को बढ़ाया है। इस समय 4,400 कुओं से तेल निकाला जा रहा है। दो तेल-शोधक हैं। 16 करोड़ गैलन वार्षिक उत्पादन है।

बर्मा में कीमती पत्थर बड़ी संख्या में मिलते हैं। हीरा और

प्राचीन वेश-भूषा में वर्मी नारी

Adarsh Library & Reading Room
Geeta Bhawan. Adarsh Nagar,
JAIPUR-

हाल में रंगून के पास कपड़ा, जूट, साइकिल, जूतों और दवाइयों के कारखाने सरकारी क्षेत्र में खोले गए हैं। लोहा-फौलाद का एक कारखाना, सीमेण्ट के दो कारखाने, चीनी तथा टीन के कारखाने भी चल रहे हैं।

कायाह प्रान्त में लोपीता स्थान पर विशाल पनविजलीघर बनाया गया है और उससे 84,000 किलोवाट विजली 250 मील दूर रंगून तथा 223 मील दूर माण्डले तक गई है। इस विजलीघर से 109 कस्बों और 287 ग्रामों को विजली दी जाती है। यह विजली योजना 1953 में शुरू की गई थी और इसके लिए युद्ध-हर्जाने के रूप में जापान से धन मिला था।

रंगून की स्थापना 1755 ईसवी में वर्मी सम्राट ग्रालोंगपाया ने की थी लेकिन 1824 तक यह छोटा-सा कस्बा ही बना रहा। ग्रंग्रेज़ों का प्रवेश होते ही नगर तेज़ी से बढ़ा। ग्राज रंगून की ग्रावादी लगभग 18 लाख है। जिसमें 40 हज़ार भारतीय तथा भारतीयों के वंशज हैं। रंगून नगर में चीनियों की संख्या 24 हज़ार से ज़्यादा है।

राजधानी में किस हद तक धार्मिक स्वतंत्रता है, इसका पता विभिन्न मतों के धर्म-स्थानों की संख्या से लगाया जा सकता है। हज़ारों पगोडा, सैकड़ों मन्दिर, मस्जिद, गिर्जाघर ग्रादि नगर की सड़कों-गलियों में विखरे हुए हैं। चीनियों के बौद्ध मन्दिर भी बड़ी संख्या में हैं।

नगर में दो बड़ी झीलें हैं—कंदावती ग्रौर इन्या। इन्या झील के तट पर रंगून विश्वविद्यालय की विशाल इमारतें हैं। केन्द्रीय सरकार के कार्यालय नगर के मध्य में हैं।

रंगून के राष्ट्रीय संग्रहालय में देश के इतिहास का दर्शन किया जा सकता है। संग्रहालय में प्रमुख वर्मी सम्राट मिनडोन का सिंह-सिंहासन, महारानी की शाही बग्घी, 1757 की तांबे की तोप, सातवीं शताब्दी की बुद्ध-मूर्तियां ग्रादि देखने योग्य हैं। सिंह-सिंहासन ग्रन्तिम वर्मी सम्राट थिबो की याद दिलाता है। यह 27 फुट ऊंचा है ग्रौर चित्रकारी का ग्रद्भुत नमूना है।

रंगून नगर में राष्ट्रीय पुस्तकालय भी है। इसमें पचास हज़ार पुस्तकें, 13,335 ताड़पत्र पर लिखी किताबें तथा 23 हज़ार ग्रन्य हस्त-लिखित पाण्डुलिपियां हैं।

वर्मा के राष्ट्रपिता ग्रांग सान का संग्रहालय टावर लेन के उसी मकान में है जिसमें वे रहा करते थे। उसका सारा व्यक्तिगत सामान

3

राजधानी और नगर

बर्मा ग्रामों का देश है और यहां की 85 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है। इसलिए नगर थोड़े और छोटे हैं। केवल चार नगरों की आबादी एक लाख से ज़्यादा है। देश में कुल 184 नगर तथा 50 हज़ार गांव हैं।

रंगून

रंगून नगर बर्मा की राजधानी है। यह नगर बंगाल की खाड़ी से 20 मील दूर रंगून नदी पर स्थित है और अच्छा बन्दरगाह है। देश का 85 प्रतिशत से अधिक आयात-निर्यात इसी बन्दरगाह से होता है। बंगाल की खाड़ी से रंगून बन्दरगाह तक बड़े-बड़े जहाज़ आ-जा सकते हैं और प्रति वर्ष सैकड़ों जलपोत माल लाते और ले जाते हैं।

जयपुर शहर की तरह रंगून की सड़कें सीधी और चौपड़ की भांति हैं। इसी कारण रंगून को पूर्व का सबसे सुन्दर नगर कहते हैं। नगर के ठीक बीच में ढाई हज़ार साल पुराना सुले पगोडा है और उसके चारों ओर सीधी सड़कें बराबर चौड़ी और लम्बी फैली हुई हैं। इसके नाम नहीं हैं। वे अमरीका की तरह संख्या से जानी जाती हैं।

भेज दिया था और रत्नागिरि में 1916 में उनका देहान्त हुआ था।

माण्डले का किला अब तक वर्मी सम्राटों के समय की याद दिलाता है। पत्थर के विशाल किले के चारों ओर चौड़ी और गहरी खाई है। किले के सभी महल खाली और सुनसान पड़े हैं। अंग्रेज़ों ने इस किले का वही हाल किया जो दिल्ली के लाल किले का।

माण्डले नगर की आवादी साढ़े तीन लाख है। नगर में अनेक वौद्ध शिक्षा केन्द्र हैं और नाट्यगृह तो गली-गली में मिलेंगे। नगर के पास इरावदी नदी पर एक मील लम्बा पुल है जो 1938 में एक

रंगून का सुप्रसिद्ध
... पुस्तकालय

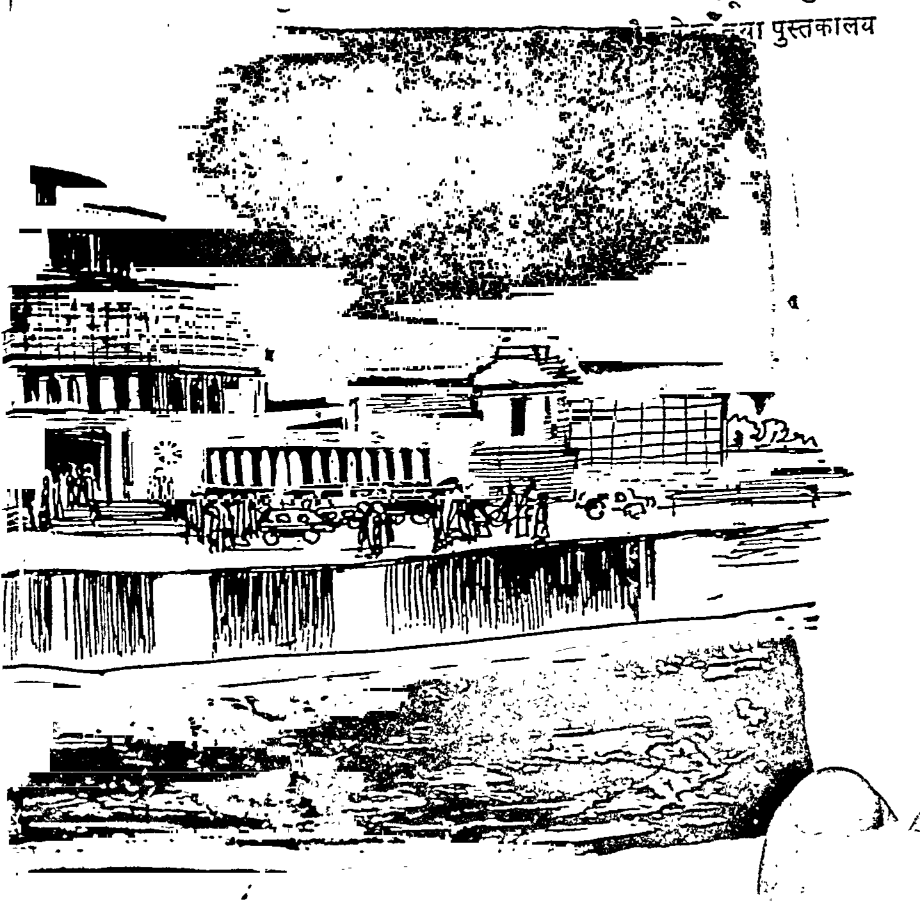

तथा फर्नीचर आदि उसी रूप में रखा गया है, जैसा कि उनके दिनों में था।

माण्डले

मध्य वर्मा में इरावदी नदी के तट पर स्थित माण्डले नगर वर्मा का मुख्य सांस्कृतिक केन्द्र है। इसकी स्थापना 1857 में सम्राट मिनडोन ने की थी और यही नगर अंतिम वर्मी सम्राट थिबो की राजधानी रहा। सम्राट थिबो को अंग्रेज़ों ने देश से निकालकर भारत

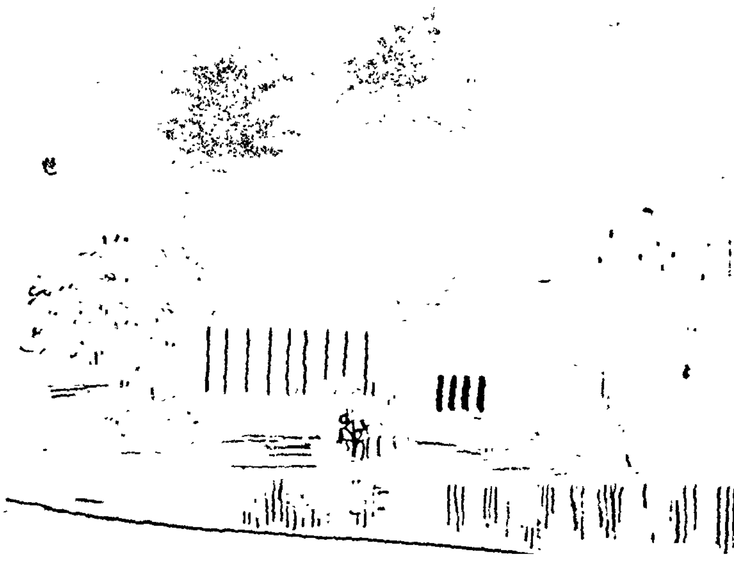

अक्याब

अराकान क्षेत्र का प्रमुख बन्दरगाह अक्याब देखने में बिलकुल भारतीय नगर-सा लगता है, हालांकि अब इस नगर में भारतीयों या उनके वंशजों की संख्या ज़्यादा नहीं रही। अराकान क्षेत्र ऊंची पहाड़ियों के कारण बर्मा के केन्द्रीय भाग से अलग-सा है और इस क्षेत्र में पैदा होने वाले चावल को अक्याब बन्दरगाह से ही निर्यात किया जाता है।

पागान

माण्डले से 120 मील दक्षिण की ओर इरावदी नदी के पूर्वी तट पर स्थित प्राचीन पागान नगर '40 लाख पगोडों का नगर' कहलाता है। आजकल यह नगर मुख्यत: खण्डहर ही है और इसमें बने धर्म-स्थानों का दर्शन करने साल-भर बौद्ध लोगों का तांता-सा लगा रहता है। लगभग पांच हज़ार पगोडे अब भी गिने जाते हैं।

पागान नगर की स्थापना पागान वंश के प्रथम सम्राट अनव्रहत ने 1044 ईसवी में की थी। इसी नगर से बर्मा के इतिहास में पहली बार सारे देश को एकता के सूत्र में बांधा गया था। 13वीं शताब्दी में कुबलाई खान के नेतृत्व में मंगोलों ने बर्मा पर हमला किया और पागान नगर को लूटकर जला दिया। तब से यह नगर फिर कभी जीवित न हो सका।

पागान नगर के स्वर्णकाल में प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ने इस नगर की यात्रा की थी और लिखा था : "नगर में 44,86,733 पगोडे हैं और यहां के समान राजमहल मैंने कहीं नहीं देखा।"

करोड़ रुपये की लागत से बना था। 1942 में जापानी हमले के समय अंग्रेज़ों ने इस पुल को बारूद से उड़ा दिया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 1954 में ही इसको फिर से बनाया जा सका।

मौलमीन

सालवीन नदी पर मौलमीन बन्दरगाह लकड़ी और चावल के लिए विख्यात है। यहां से वर्मा की मशहूर इमारती लकड़ी दुनिया के बहुत-से देशों को भेजी जाती है। लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठे सालवीन नदी में बहाकर मौलमीन लाए जाते हैं। यहां उन्हें एकत्र करके जहाजों में लादा जाता है।

नगर की आबादी लगभग डेढ़ लाख है। आबादी की दृष्टि से मौलमीन का तीसरा स्थान है। बन्दरगाह समुद्र की ओर से बिलू-गुएन टापू से सुरक्षित है।

बेसीन

रंगून के बाद बेसीन बन्दरगाह का देश में दूसरा स्थान है। यह इरावदी नदी की सहायक नदी बेसीन पर स्थित है और इरावदी के डेल्टा में पैदा होने वाले चावल का निर्यात मुख्य रूप से इसी बन्दर-गाह से होता है।

वर्मा के इतिहास में बेसीन बन्दरगाह का विशेष स्थान है। 1852 के द्वितीय एंग्लो-वर्मा युद्ध में राष्ट्रवादियों ने इस बन्दरगाह की बखूबी रक्षा की थी। नगर की आबादी एक लाख से कुछ अधिक है। नगरवासियों में भारतीयों के वंशजों तथा चीनियों की संख्या काफी है। इस कारण भारतीय मन्दिर तथा चीनी बौद्ध मन्दिर बड़ी संख्या में दिखाई पड़ते हैं।

और तब से यह इसी रूप में है।

ज़मीन पर पगोडा की गोलाई 1420 फुट है। इसके चारों ओर 64 छोटे पगोडे हैं, जिनमें चारों दिशाओं के चार पगोडे कुछ बड़े हैं। चारों कोनों पर सिंहद्वार तथा धर्मशालाएं हैं। विभिन्न इमारतों में लकड़ी पर खुदाई का सुन्दर काम है।

विभिन्न मन्दिरों में पद्मासन लगाए बुद्ध-प्रतिमाएं हैं जो अलाबास्टर, पत्थर या पीतल की हैं। कांसे के दो विशाल घंटे हैं। इनमें एक 140 टन का है जिसे 1841 में सम्राट थरवड्डी ने भेंट किया था। यह साढ़े आठ फुट ऊंचा है। दूसरा घंटा 16 टन वज़न का है और 7 फुट ऊंचा है तथा इसे सम्राट सिनबुशिन के पुत्र सिंगु ने 1778 में भेंट किया था।

पगोडा पर चढ़ने के लिए चारों ओर सीढ़ियां हैं और पूर्व तथा दक्षिण की ओर बिजली की लिफ्ट लगाई गई है।

सुले पगोडा

रंगून नगर के बीचो-बीच सुले पगोडा है। यह पगोडा 2,250 वर्ष पूर्व मोन वंश के राजाओं ने बनवाया था। भारत से दो भिक्षु भगवान बुद्ध के अवशेष लाए जिन्हें इस पगोडा में रखा गया है। यह पगोडा 157 फुट ऊंचा है।

आनन्द पगोडा

ग्यारहवीं शताब्दी में देश की राजधानी पागान नामक नगर थी। यह अत्यंत विशाल नगर था जहां 40 लाख से ज़्यादा मन्दिर थे। मंगोल आक्रमणकारी कुबलाई खान ने इस नगर के मन्दिरों को तेरहवीं शताब्दी में बर्बाद कर दिया था। जो मन्दि

4
प्रमुख पगोडे

बर्मा पगोडों का देश है और हर नगर और ग्राम इन्हीं बौद्ध मन्दिरों के चारों ओर बसा होता है। इन बौद्ध पगोडों की घंटियों की ध्वनि बर्मी समाज का प्रमुख अंग है। बर्मा में अब तक कभी पगोडों की गिनती नहीं की गई। एक अनुमान यह है कि जितने पुरुष हैं उतने ही पगोडे हैं।

श्वेदगों पगोडा

रंगून का श्वेदगों पगोडा विश्व का अपने किस्म का सबसे बड़ा बौद्ध मन्दिर है और कहते हैं कि यह ढाई हज़ार वर्ष पुराना है। लोक-कथा के अनुसार ओक्कला राज्य के दो व्यापारियों ने भगवान बुद्ध के पवित्र बाल प्राप्त किए और ओक्कला के राजा ने अपनी राजधानी में सिगुत्तरा पहाड़ी पर सुनहरा पगोडा बनवाया। इसी ओक्कला नगर का नाम 11वीं शताब्दी में 'दागोन' पड़ा और बाद में नाम रंगून हो गया।

आरम्भ में यह पगोडा 27 फुट ऊंचा था लेकिन सन् 1362 में राजा विन्य ने इसे 66 फुट ऊंचा बनवा दिया। सन् 1453 में महारानी शिनसावू ने भी पगोडा का काफी विकास किया। 1774 में अवा के राजा सिनवुशिन ने पगोडा को 326 फुट ऊंचा बनवाया

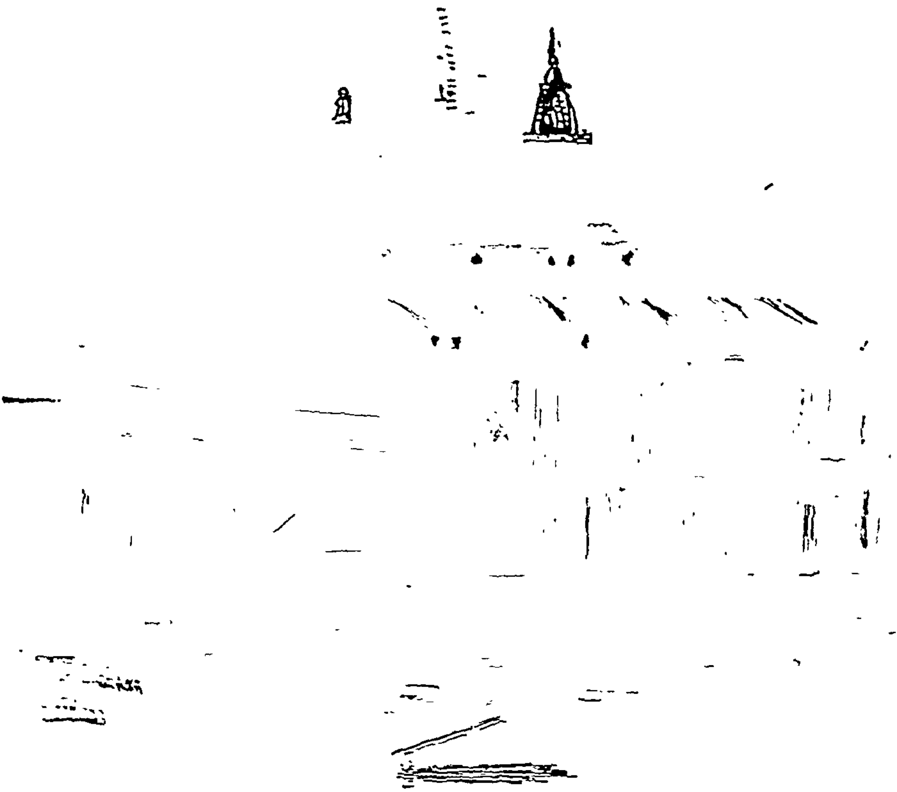

पागान का सुप्रसिद्ध
आनन्द पगोडा

और पांचमंज़िला है। पहली और दूसरी मंज़िलों में बौद्ध भिक्षु रहते थे। तीसरी मंज़िल में भगवान बुद्ध की विशाल प्रतिमा है, चौथी मंज़िल में पुस्तकालय है, और पांचवीं मंज़िल में भगवान बुद्ध के पवित्र अवशेष रखे हैं।

मंगोल हमलावरों से बचे रहे, उनमें आनन्द पगोडा सबसे सुन्दर है। दूर से देखने पर यह भारतीय मन्दिर लगता है। पत्थरों पर गौतम बुद्ध का जीवन तथा जातक कथाओं को चित्रित किया गया है। इसमें भगवान बुद्ध की चार विशाल सुनहरी प्रतिमाएं हैं।

विश्व-शान्ति पगोडा

रंगून से 7 मील उत्तर की ओर कबा-आमे पगोडा 1951 में विश्व-शान्ति के लिए बनवाया गया। यह 118 फुट ऊंचा तथा 118 फुट चौड़ा है। इसके पास एक बौद्ध विश्वविद्यालय बनाया गया है जहां विश्व-भर के बौद्ध विद्वान अध्ययन करने आते हैं। अखिल विश्व बौद्ध परिषद् की छठी बैठक यहीं पर आयोजित की गई।

श्वेजीगों पगोडा

पागान के खण्डहरों से 5 मील दूर वर्तमान कस्बा न्योग के पास श्वेजीगों पगोडा है जो 1044 में राजा अनव्रहत ने बनवाना शुरू किया था और राजा क्यानसिद्ध ने पूरा किया। यह रंगून के श्वेदगों की तरह है। पगोडा के चारों ओर भगवान बुद्ध के पूर्वजन्मों की कहानी खुदी हुई है। पगोडा में भगवान का पवित्र दांत रखा हुआ है। इसीलिए समस्त बर्मा के बौद्ध लोग इस पगोडा के दर्शन करने आते हैं। वर्ष में एक बार पवित्र दांत के दर्शन कराए जाते हैं।

थातविन्यु पगोडा

यह पगोडा पागान के खंडहरों में सुरक्षित अवस्था में है। इसे [राज]ा क्यानसिद्ध ने 1144 में बनवाया था। यह 210 फुट ऊंचा है

5
इतिहास की रूपरेखा

वर्मा का लिखित इतिहास ग्यारहवीं शताब्दी से शुरू होता है। सन् 1044 में अनव्रहत ने पागान नगर में अपना शासन कायम किया था। इसी समय से पागान राजपरिवार की शुरुआत मानी जाती है। अनव्रहत ने अपने वड़े भाई सोक्काते को मारकर गद्दी पाई थी, इसीलिए उसका मन सदा बेचैन रहता था। उसने पहले तो अपने पिता को गद्दी देने का यत्न किया लेकिन पिता ने भिक्षु बनकर पगोडा में रहना शुरू कर दिया। एक दिन अनव्रहत ने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में उसे आदेश मिला: "पगोडा, बावड़ी, कुएं, धर्मशाला, नहर और तालाव बनवाकर जनता की सुविधा बढ़ाओ तो तुम अपने भाई की हत्या के लिए प्रायश्चित्त कर सकोगे।" अनव्रहत ने ऐसा ही किया और इसीलिए वर्मा के इतिहास में उसे 'महान निर्माता' के रूप में याद किया जाता है।

राजगद्दी पर बैठते समय अनव्रहत विवाहित था और उसका सोलू नामक एक पुत्र था। लेकिन फिर भी वह भारतीय राजकुमारी से विवाह के लिए उत्सुक था। उसने भारत के अनेक राजाओं की राजधानियों में अपने दूत भेजे। वैशाली की राजकुमारी पंचकल्याणी के पिता विवाह के लिए राज़ी हो गए और बर्मा के पागान राजा के सरदारों के साथ पालकी में बैठकर पंचकल्याणी भारत से बर्मा गई।

गोदोपलिन पगोडा

यह पगोडा 1173 में राजा नरपति सिद्ध ने बनवाया था। यह थातविन्यु से मिलता-जुलता है। इस पगोडे का इतिहास एक शिला पर खुदा हुआ है।

महाबोधि पगोडा

यह पागान में है और सबसे ऊंचा है। इसे 1234 में राजा नंदगम्य ने बनवाया था।

श्वेसनदो पगोडा

इस पगोडे की विशेषता इसके तीन दरवाज़ों पर हिन्दू देवताओं की मूर्तियां हैं। इसे 1057 में राजा अनव्रहत ने थाटोन पर विजय प्राप्त करने के बाद बनवाया था।

विश्व में भगवान बुद्ध की लेटी हुई सबसे विशाल प्रतिमा रंगून से पचास मील दूर पीगू नगर में है। यह 180 फुट लम्बी और कंधों पर 50 फुट चौड़ी है।

खड़ा है और अनव्रहत की याद दिलाता है। इसमें श्रीलंका से आया भगवान बौद्ध का दांत है।

अनव्रहत को एक जंगली भैंसे ने मार डाला था और सन् 1077 उसका पुत्र सोलू गद्दी पर बैठा। उसने अपने पिता की तेलंग पत्नी किन ऊ से विवाह कर लिया। बर्मा में यह परम्परा थी कि शाही परिवार का खून अलग रखने के लिए राजा लोग अपने परिवार की लड़कियों से ही विवाह करते थे। सोलू केवल सात साल तक ही राजा रह पाया और उसके साथी यमनकान ने उसे 1084 में मार डाला।

सोलू का देहांत होने पर वैशाली की राजकुमारी पंचकल्याणी से पैदा हुआ अनव्रहत का पुत्र क्यांजित्था पागान का तीसरा राजा बना। उसके दिनों में भारत में बौद्ध धर्म का ह्रास हो रहा था और बड़ी संख्या में भारतीय बौद्ध भिक्षु बर्मा में आ रहे थे। आठ प्रमुख भिक्षु पागान आए और पागान का आनन्द मन्दिर राजा क्यांजित्था ने उन्हीं की प्रेरणा से बनवाया। आठ शताब्दी के बाद यह मन्दिर आज भी खड़ा है। क्यांजित्था बर्मा का पहला राजा था जिसने बोधगया के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया।

क्यांजित्था के पुत्र आलोंगसिद्ध ने पागान के दक्षिण में याजदी पगोडा में एक पत्थर लगवाया जो उन दिनों के बर्मी इतिहास पर प्रकाश डालता है। इस पत्थर के चारों ओर चार भाषाओं—पाली. तेलंग, प्यू और बर्मी—में लेख हैं। इसी शिलालेख से प्यू भाषा को समझने में सफलता मिली है।

इस शिलालेख पर लिखा हुआ है कि उन दिनों पागान का नाम अरिदमनपुर था और क्यांजित्था के पुत्र का नाम यजकुमार था। उसने हज़ारों पगोडे और बौद्ध विहार बनवाए थे। उसी के

मार्ग में सरदार ने पंचकल्याणी के साथ विवाह करने का यत्न किया परन्तु सफल नहीं हुआ। गुस्से में आकर सरदार ने पंचकल्याणी के साथ आने वाली 80 दासियों को बर्मा के विभिन्न क्षेत्रों में भेज दिया और अनव्रहत तथा पंचकल्याणी के विवाह के बाद यह अफवाह फैला दी कि पंचकल्याणी किसी राजा की लड़की नहीं, दासी की पुत्री है। इस पर राजा अनव्रहत ने पंचकल्याणी को महल से निकाल दिया। बाद में पंचकल्याणी के क्यांजित्था नामक पुत्र पैदा हुआ जिसे राजा ने अपने दरबार में रख लिया।

राजा अनव्रहत का राज्य केवल 200 मील लम्बा और 80 मील चौड़ा था। उसने प्रशासन संगठित किया, नहरें बनवाई, जिससे चावल का उत्पादन बढ़ा, और जनता की आर्थिक हालत सुधरी।

एक दिन दक्षिण बर्मा के तेलंग राज्य का एक बौद्ध भिक्षु शिन अरहन पागान आया। उसने राजा अनव्रहत को बौद्ध धर्म की थिरवद शाखा में दीक्षित किया। इस प्रकार पागान राज्य के लोगों को अरि साधुओं के पाखंड से छुटकारा मिला। बलि प्रथा खत्म हुई और धर्म के नाम पर शराब पीने आदि की प्रथाएं भी समाप्त की गई।

शिन अरहन ने बौद्ध धर्म का त्रिपिटक साहित्य दक्षिण बर्मा के थाटोन नगर से मंगाने के लिए दूत भेजे लेकिन उन्हें खाली हाथ लौटना पड़ा। इससे क्रोधित होकर राजा अनव्रहत ने थाटोन पर हमला किया। तीन महीने के घेरे के बाद थाटोन राज्य ने आत्मसमर्पण कर दिया और उसके बाद थाटोन नगर किसी राजा की राजधानी नहीं रहा।

थाटोन से बड़ी संख्या में बौद्ध साहित्य लाया गया। 30 हजार गुलामों में अधिकांश दस्तकार तथा राज थे, जिन्होंने बड़े-बड़े मन्दिर तथा पगोडे बनाने में सहायता की। स्वजीगोन पगोडा आज भी

राजधानी मर्तवान नगर में थी और बाद में पीगू में। इस वंश का शासन 1539 तक चलता रहा।

वरेरू का नाम इसलिए प्रसिद्ध हुआ कि उसने वर्मी कानून-शास्त्र की आधार-शिला रखी। उसने भारत से आई मनुस्मृति तथा अन्य भारतीय कानून साहित्य को एकत्र किया और बौद्ध भिक्षुओं को एकत्र कर एक संकलन तैयार कराया। उस सकलन का नाम 'वरेरू धम्मथाट' पड़ा। यही सकलन वर्मा के सभी कानूनों का जनक है।

जब अवा का विघटन हो रहा था और शान लोग तितर-बितर हो रहे थे, ताविंशवेहती नामक एक छोटे सरदार ने सारे वर्मा का एकीकरण करने का यत्न किया। पहले उसने तोंगू से चलकर पीगू पर कब्ज़ा किया और वहां के तेलंग राजा को बिना लड़ाई के हरा दिया। 1542 में उसने प्रोम नगर पर कब्ज़ा किया। लगभग सारा दक्षिण वर्मा जीतने के बाद वह उत्तर की ओर बढ़ा और पागान में उत्तरी वर्मा के राजा का ताज भी पहन लिया। 1546 में तोंगू लौटने पर उसने वर्मी तथा तेलंग विधियों से अपने को सारे वर्मा के राजा के रूप में व्यक्त किया। उसने सारे वर्मा का एकीकरण करने से पूर्व ही अराकान और स्याम पर हमला किया। उसने पुर्तगालियों को अपनी सेना में सम्मिलित किया और बंदूक चलाना पहली बार सीखा। पुर्तगालियों से उसने शराब पीना सीखा और शराब के नशे में भले लोगों को कत्ल करना शुरू कर दिया। बाद में तेलंग सरदारों ने उसे एक जंगल में मार डाला।

ताविंशवेहती से तोंगू राजवंश शुरू होता है जो 1752 तक चला। बाद में उनकी राजधानी अवा नगर में पहुंच गई थी। तोंगू राजवंश के अंतिम दिनों में दक्षिण से तेलंग सरदारों के हमले बढ़ गए थे। उनके राजा को फ्रांसीसियों ने मान्यता दी थी और

में कहा जाता था कि पागान में दस लाख पगोडे थे।

पागान राजपरिवार सवा दो सौ वर्ष तक राज्य करता रहा। सन् 1287 में मंगोल सरदार कुबलाई खान के सैनिकों ने पागान पर हमला किया और राज्य का अंत कर दिया। राजधानी भी बर्बाद कर दी गई। नगर के खंडहर आज तक दिखाई देते हैं और आज भी खंडहरों में पांच हज़ार पगोडे गिने जा सकते हैं।

पागान राज्य के परास्त हो जाने के बाद बर्मा में अगले ढाई सौ वर्ष तक कोई केन्द्रीय शासन कायम नहीं हो सका और देश छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित रहा। कानूनी दृष्टि से तब के सभी छोटे-छोटे बर्मी राज्य पेकिंग के मंगोल शासकों के अधीन थे, लेकिन यह तथ्य तो दिखावा-मात्र था क्योंकि पेकिंग से इन छोटे राज्यों का शासन नहीं हो सकता था।

मंगोलों के हमलों से पागान राज्य ध्वस्त हो गया था लेकिन नगर तथा आस-पास के कुछ इलाके पर पागान वंश के राजा का शासन आगामी कुछ वर्ष तक बना रहा। सन् 1300 में बारह हज़ार चीनी सैनिक पागान की राजगद्दी बचाने के लिए फिर आए लेकिन वे सफल नहीं हुए। इसके बाद चीनियों ने कभी हस्तक्षेप नहीं किया।

पागान की समाप्ति पर शान लोगों ने 1531 तक उत्तरी बर्मा पर शासन किया। शान पहाड़ी लोग इन दो सौ वर्षों में बड़ी संख्या में इरावदी के मैदान में आए और बसे। उनके एक सरदार थाडो-मिन्बया ने पागान के उत्तर-पूर्व में अवा नगर की स्थापना की जो आगामी पांच सौ साल तक बर्मा की राजधानी रहा। वहां राज्य करने वालों को अवा राजवंश भी कहा जाता है।

पागान राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर वरेरू नामक व्यक्ति ने दक्षिण बर्मा पर अपना अधिकार कर लिया। आरम्भ में उसकी

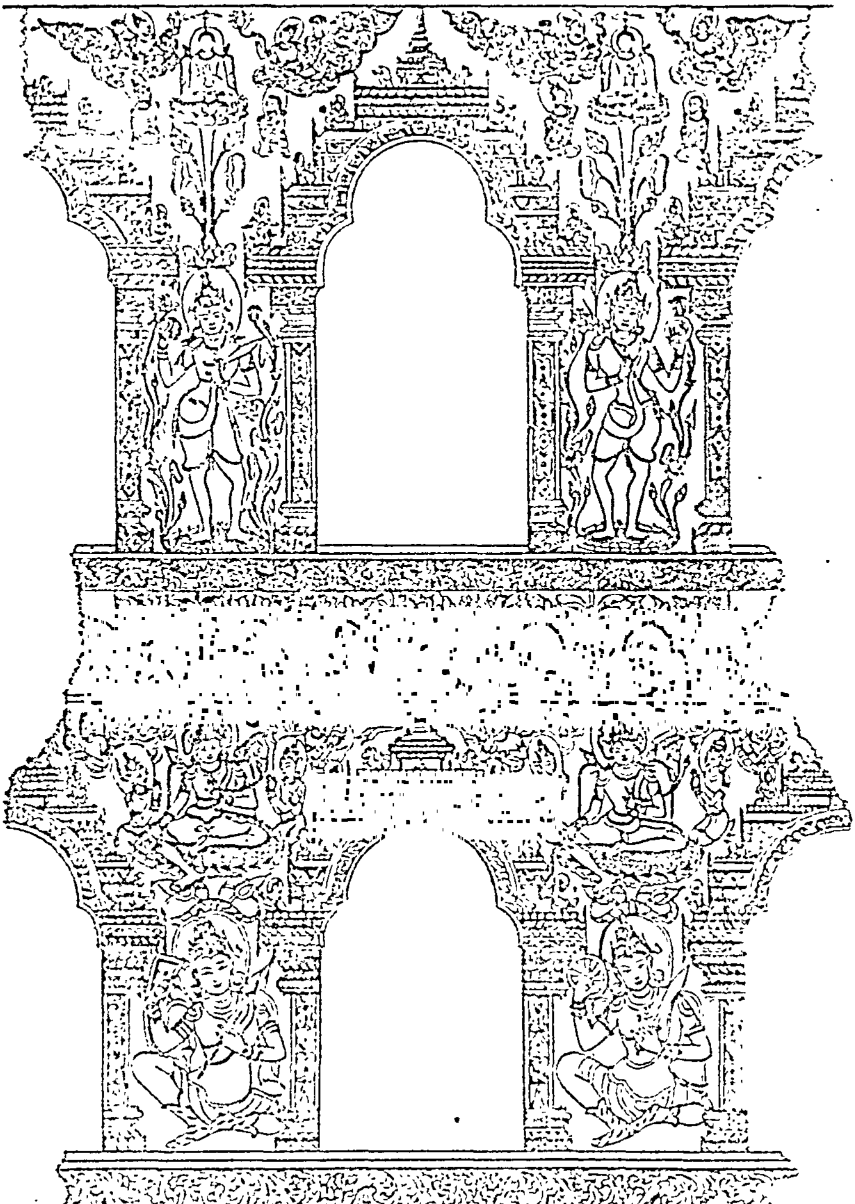

अभयदान मन्दिर में बना एक भित्तिचित्र

से यूरोपियनों के हस्तक्षेप शुरू हो गए थे।

सन् 1752 में एक छोटे वर्मी सरदार आलोंगपाया ने तेलंग लोगों को अवा से खदेड़ा और नये राजवंश की स्थापना की जो उसी के नाम से विख्यात हुआ। यह वर्मा का अंतिम राजवंश था। उसके अंतिम राजा थिवो को अंग्रेज़ों ने तीसरे एंग्लो-वर्मी युद्ध के वाद कैद करके भारत में रत्नागिरि में भेज दिया था।

राजा आलोंगपाया ने सन् 1757 में अंग्रेज़ों से संधि की थी और उनसे प्राप्त तोपों के वदले उनको नेगराइस टापू गढ़ वनाने को दे दिया था। उसने फ्रांसीसियों के केन्द्र सीरियम को भी नष्ट कर दिया था। आलोंगपाया ने वर्मा का एकीकरण किया और 1755 तथा 1758 में ब्रिटिश भारत के मणिपुर पर हमले किए। उसके वाद के राजाओं ने भी 1819 में मणिपुर पर हमले किए।

आलोंगपाया के राजवंश को अवा राजवंश भी कहा जाता है। वोदापाया के दिनों में वर्मी साम्राज्य का असम की पहाड़ियों तक विस्तार हुआ था। आलोंगपाया ने मोन के विरुद्ध संघर्ष में उनकी प्राचीन राजधानी दागोन पर कब्ज़ा कर लिया था और उसका नाम यागोन रखा था। वाद में यागोन से रंगून नाम पड़ा जो आज वर्मा की राजधानी है।

आलोंगपाया के वंशजों को ब्रिटिश भारत से तीन लड़ाइयां लड़नी पड़ीं। तीसरी लड़ाई 1885 में हुई जव अवा राजवंश के अन्तिम राजा थिवो ने अंग्रेजों के समक्ष समर्पण कर दिया।

यूरोपियनों से संघर्ष

15वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में स्पेन और पुर्तगाल ने दुनिया को अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र में वांट लिया था। वर्मा को पुर्तगाली

आज्ञा प्राप्त करके सीरियम बंदरगाह पर पहली फैक्टरी कायम की थी। 12 वर्ष बाद अंग्रेज़ों ने भी बर्मा में अपनी पहली फैक्टरी कायम की। उन दिनों जलपोत से जाने पर मद्रास से सीरियम तक 30 दिन लगते थे।

जल्दी ही डच और ब्रिटिश व्यापारियों में झगड़े शुरू हो गए। बर्मा की लूट में वे आपस में हिस्सा नहीं बांटना चाहते थे। 1657 में डच लोगों ने ब्रिटिश कम्पनी को सीरियम से उखाड़ फेंका। सन् 1695 में मद्रास में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर ने एडवर्ड फ्लीटवुड के नेतृत्व में बर्मा की राजधानी अवा को एक मिशन भेजा और सीरियम में पुनः अपनी फैक्टरी खोलने का आदेश प्राप्त किया। 1743 तक सीरियम में ब्रिटिश फैक्टरी कायम रही और साथ ही फ्रांस की फैक्टरी भी स्थापित हो गई थी। इन्हीं दिनों दक्षिण बर्मा के मोन लोगों ने अवा राजाओं के खिलाफ विद्रोह किया और फ्रांस ने उनका साथ दिया। फ्रांस के प्रभाव में आकर मोन लोगों ने 1743 में सीरियम की ब्रिटिश फैक्टरी को जला दिया।

सीरियम से हटकर ब्रिटिश लोगों ने बर्मा के पश्चिमी तट के पास के नैगराइस द्वीप पर कब्ज़ा कर लिया और वहां अपनी फैक्टरी बना ली। सन् 1750 तक ब्रिटिश और फ्रांसीसी लोग बर्मा के आंतरिक संघर्षों में दखल देने लगे थे और धीरे-धीरे अपना-अपना प्रभाव बढ़ाने लगे थे।

जब राजा आलोंगपाया ने बर्मा का तीसरी बार एकीकरण किया और मजबूत सरकार कायम की तो अंग्रेज़ों ने उसके दरबार में एक नया मिशन भेजा तथा नैगराइस और बेसीन में अपनी फैक्टरियां कायम करने का अधिकार-पत्र प्राप्त किया। 1757 में ब्रिटिश लोगों ने राजा आलोंगपाया के साथ मैत्री संधि की। किसी पश्चिमी देश के

प्रभाव-क्षेत्र का देश बनाया गया। पुर्तगालियों ने व्यापार के नाम पर वर्मा में पैर रखने का यत्न किया लेकिन तोंगू वंश के राजा वेईनोंग ने सफलतापूर्वक पुर्तगालियों को अनेक वर्षों तक रोका। उन दिनों पीगू नगर में राजधानी थी और वहां के बने मर्तबान सारे यूरोप में बिकते थे। पीगू के पास एक नगर है जिसका नाम मर्तबान है और अचार रखने के चीनी मिट्टी के बर्तन उसीके नाम पर जाने जाते हैं। आज भी भारत में ही नहीं सारे विश्व में इनका नाम मर्तबान ही है।

सबसे पहला यूरोपीय यात्री लुडोविको दि वर्थीमा था जिसने सन् 1503 में वर्मा की यात्रा की थी। उसका लिखा वर्णन आज भी प्राप्त है। सबसे पहला अंग्रेज था राल्फ फिच, जिसने 1580 में राजधानी पीगू का वर्णन लिखा है। उसने लिखा था, "पीगू जैसी अच्छी और सीधी सड़कें दुनिया में कहीं नहीं पाई जातीं। इन सड़कों पर 12 गाड़ियां एकसाथ चल सकती हैं।"

पुर्तगालियों, डचों, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों ने 16वीं शताब्दी में वर्मा से व्यापार शुरू कर दिया था। वर्मा के तोंगू वंश के राजा अनोकपेतलून ने 17वीं शताब्दी के आरम्भ में स्याम के उत्तरी भाग पर हमला करके एक ब्रिटिश व्यापारी थामस सेमुअल को बंदी बनाया था। उसे पीगू ले जाया गया था, जहां एक साल में उसका देहांत हो गया। भारत से ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उस व्यापारी का सामान लेने के लिए दो एजेंट भेजे जो दो साल तक वर्मा में रहे और लौटते समय कम्पनी के लिए उपहार तथा वर्मी राजा का पत्र लाए। पत्र में राजा ने लिखा था कि वर्मा में ब्रिटेन को व्यापार की निर्बाध सुविधाएं दी जाएंगी।

सन् 1635 में डच व्यापार कम्पनी ने वर्मा के राजा थालुन से

थिवो बैठा। अंग्रेज़ों ने पहले तो उसे अपदस्थ करके अपने किसी मित्र को गद्दी पर बैठाने का यत्न किया। फिर 1886 में थिवो को अल्टीमेटम दिया कि वे अपने परराष्ट्र मामलों में ब्रिटिश सरकार से आदेश लिया करें। इस अल्टीमेटम के साथ-साथ रंगून से 10 हज़ार गोरों की सेना राजधानी माण्डले की ओर रवाना हुई। राजा थिवो ने आत्मसमर्पण कर दिया। अंग्रेज़ों ने राजा थिवो को निर्वासित करके रत्नागिरि भेज दिया और फिर सारे बर्मा पर ब्रिटिश कब्ज़ा हो गया।

लेकिन राजवंश की समाप्ति के बाद भी पांच साल तक बर्मी जनता अंग्रेज़ों से लड़ती रही। शान, काचिन तथा चिन जातियों ने पूरी तरह ब्रिटिश सत्ता कभी स्वीकार नहीं की और वे सदा विद्रोह करते रहे। 35 हज़ार ब्रिटिश सेना पूरे बर्मा पर कभी राज नहीं कर सकी। पहाड़ी इलाकों में अंतिम क्षण तक अंग्रेज़ी शासन कायम नहीं हो पाया।

अंग्रेज़ी शासन काल में बर्मी जनता ने संवैधानिक लड़ाई जारी रखी। पहले अंग्रेज़ों ने 1897 में छोटी विधान सभा स्थापित की और फिर उसे 1909 और 1920 में बड़ा रूप दिया गया। सन् 1920 में भारत की भांति मोंटेगू-चेम्सफोर्ड सुधारों के अन्तर्गत बर्मा में भी दोहरी व्यवस्था की गई। इन दिनों बर्मा भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य का एक प्रान्त था, लेकिन उसे काफी हद तक स्वायत्त शासन के अधिकार भी दिए गए थे।

इसी बीच भारत से बर्मा को अलग करने की मांग ने ज़ोर पकड़ा और राष्ट्रवादी आन्दोलन में गति आई। 1935 में ब्रिटिश संसद् ने बर्मी कानून पास किया और अप्रैल, 1937 में बर्मा को भारत से अलग देश बनाया गया। 1935 के कानून के अनुसार दो सदनों की संसद् स्थापित की गई। लोकसभा के आधे सदस्य निर्वाचित हुए।

साथ बर्मी राजा की यह पहली संधि थी।

नैगराइस द्वीप में अंग्रेजों ने बड़ी संख्या में गोरी तथा भारतीय सेना एकत्र कर ली थी और द्वीप को अच्छा सैनिक गढ़ बना लिया था। अंग्रेजों का लक्ष्य यह था कि इस द्वीप से आगे बढ़कर वे जल्दी ही बर्मी राजा को हरा दें और सारे बर्मा पर कब्ज़ा कर लें। लेकिन बर्मी राजा ने उनकी इस चाल को समझकर 1759 में नैगराइस पर हमला किया और सौ अंग्रेजों को मार डाला। चार गोरों को पकड़कर राजधानी अवा भी ले जाया गया।

सन् 1795 में भारत के ब्रिटिश गवर्नर जनरल सर जान शोर ने बर्मा की राजधानी में एक नया मिशन भेजा। राजा से सम्बन्ध सुधारे गए। उसे तोपें तथा बारूद देने के बदले में अंग्रेजों ने रंगून में ब्रिटिश एजेंसी कायम करने का अधिकार प्राप्त किया तथा बर्मी दरबार में अपने राजदूत रखने का फैसला किया।

19वीं शताब्दी के शुरू होते ही भारत के ब्रिटिश गवर्नर जनरलों ने बर्मा की सीमा पर तोड़-फोड़ शुरू कर दी और 1824 में बर्मा पर बंगाल की ओर से हमला किया। इसे प्रथम एंग्लो-बर्मी युद्ध कहते हैं। इस युद्ध की समाप्ति पर बर्मी लोगों पर जो संधि थोपी गई उसके अनुसार असम, मणिपुर, अराकान और तनासरिम इलाके अंग्रेजों ने छीन लिए। हर्जाने के रूप में एक करोड़ रुपये भी वसूल करने के लिए कदम उठाए गए।

अंग्रेजों ने बर्मा पर दूसरा बड़ा हमला 1852 में किया और समस्त दक्षिण बर्मा पर अधिकार करके रंगून में राजधानी बनाई। अब माण्डले के बर्मी राजा का शासन केवल उत्तरी बर्मा पर रह गया था।

सन् 1878 में माण्डले की गद्दी पर एक अत्यंत कमज़ोर राजा

की स्थापना की गई और सभी विदेशियों से वर्मा को आज़ाद करने का आह्वान किया गया। गुप्त रूप से जापानियों का मुकावला करने के संगठन वनाए गए। 27 मार्च, 1945 को राष्ट्रवादियों ने जापानी सेना पर प्रोम क्षेत्र में बड़ा हमला किया। फिर अंग्रेज़ वापस आने लगे और जापानी भागने लगे।

अक्तूबर, 1945 को ब्रिटिश गवर्नर लौट आया और फिर राष्ट्रवादियों से समझौता वार्ता शुरू हुई। जनरल आंग सान को प्रधान मंत्री बनाकर 9 अन्य मंत्री नियुक्त किए गए। 20 दिसम्बर, 1946 को ब्रिटिश प्रधान मंत्री एटली ने सत्ता-हस्तांतरण के संबंध में वात करने के लिए वर्मी प्रतिनिधि मंडल को लंदन बुलाया। पहली जनवरी, 1947 को जनरल आंग सान के नेतृत्व में यह प्रतिनिधि मण्डल लंदन गया। 'आंग सान-एटली' समझौता हुआ।

7 अप्रैल, 1947 को संविधान सभा के लिए चुनाव हुए। चुनाव में आंग सान की फासिस्ट-विरोधी जन लीग को बहुसंख्यक सीटें मिलीं। संविधान सभा ने सर्वसम्मति से वर्मा की पूर्ण आज़ादी के लिए प्रस्ताव पास किया।

एक ओर वर्मा तेज़ी से आज़ादी की देहली पर पहुंच गया था और दूसरी ओर 19 जुलाई, 1947 को राष्ट्रनेता आंग सान तथा अनेक 9 साथियों को गोली मार दी गई। आंग सान के स्थान पर ऊ नू नेता चुने गए।

4 सितम्बर, 1947 को संविधान सभा ने देश का नया संविधान वनाया और 17 अक्तूबर, 1947 को लंदनमें ऊ नू ने ब्रिटिश सरकार से वर्मा की आज़ादी का समझौता किया और उसी वर्ष 10 दिसम्वर को ब्रिटिश संसद् ने वर्मा स्वतंत्रता कानून पास किया। 4 जनवरी, 1948 को वर्मा पूर्ण स्वतंत्र हुआ और ऊ नू पहले प्रधान मंत्री वने।

सदस्यों की सिनेट भी स्थापित की गई। 10 मंत्रियों की नियुक्ति हुई।

नवम्बर, 1936 में आम चुनाव हुए। सिनयेथा पार्टी के नेता डा० वा मो प्रधानमंत्री बने। लेकिन छात्र आन्दोलन के कारण वा मो सरकार का फरवरी, 1939 में पतन हो गया और ऊ पू की सरकार बनी और उसके बाद 1940 में ऊ सा की सरकार बनी। ऊ सा को जनवरी, 1941 में जापानियों के साथ सहयोग करने के नाम पर गिरफ्तार किया गया।

बर्मा की जनता को अंग्रेज़ों द्वारा किए गए संवैधानिक सुधारों से कभी सन्तोष नहीं हुआ। मंत्रिमण्डल का काम मुख्य रूप से सलाह देना था तथा सच्ची सत्ता ब्रिटिश गवर्नर के हाथ में थी। इसलिए थाकिन पार्टी ने पूर्ण स्वतंत्रता का नारा लगाया। द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व अंग्रेज़ों ने बड़ी संख्या में राष्ट्रवादियों को गिरफ्तार किया। राष्ट्रीय नेता थाकिन आंग सान तथा उनके 29 साथी बर्मा से भाग निकले। वे जापान गए और वहां उन्होंने सैनिक शिक्षा प्राप्त की तथा जब बर्मा पर 1942 में जापान ने हमला किया तो आंग सान और उनके साथी जापानी सेना के साथ बर्मा आए तथा स्वतंत्र बर्मी सेना का संगठन किया।

सन् 1944 के मई मास में बर्मा की ब्रिटिश सरकार भागकर शिमला पहुंची और द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त होने के बाद ही शिमला से रंगून लौट सकी।

जापानी अधिकार के दिनों में बर्मा को स्वतंत्र देश घोषित किया गया। डा० वा मो राष्ट्रपति तथा आंग सान प्रधान सेनापति बने। लेकिन जापानियों की नीयत बदलने लगी और वे राष्ट्रवादियों को तंग करने लगे। इसपर आंग सान तथा उनके साथियों ने जापानियों के खिलाफ लड़ाई शुरू कर दी। फासिस्ट विरोधी जन लीग

काचिन जाति के युवक-युवती

6

सुन्दर काचिन और शान क्षेत्र

बर्मा की एक अल्पसंख्यक जाति काचिन का इलाका देश के उत्तरी भाग में है और यह सुन्दर तथा सुनहरा प्रदेश भारत और चीन की सीमा को छूता हुआ है। आम तौर से यह कहा जा सकता है कि यह काचिन प्रदेश, जो बर्मा का अब एक प्रांत है, देश का अत्यन्त सुन्दर क्षेत्र है। यहां की हरी-भरी पहाड़ियों से देश की सबसे बड़ी नदी इरावदी निकलती है तथा इसकी सहायक नदियों में सोने के कण मिलते हैं। काचिन लोग बड़ी मेहनत से इस सोने को एकत्र करते हैं।

रंगून से 710 मील उत्तर में काचिन प्रांत की राजधानी मिनकीना तक छोटी रेल लाइन जाती है। इस यात्रा में साढ़े तीन दिन लगते हैं। बर्मा के मध्य प्रांत माण्डले से पहाड़ी इलाका शुरू हो जाता है और रेल के दोनों ओर पहाड़ियों-घाटियों का सुन्दर दृश्य है। ऊंची पहाड़ियों पर बांस की दीवालों तथा लोहे की टीन के काचिन लोगों के मकान बीच में लटकते-से लगते हैं। इन्हीं पहाड़ियों पर दूर-दूर पर छोटे-छोटे खेत आसमान से लटकते-से लगते हैं।

मिनकीना कस्बा इरावदी नदी के तट से ऊपर की पहाड़ी की ओर चला गया है। यहां वर्षा काफी होती है, इसलिए बड़े-बड़े मकान या पगोडे नहीं; छोटे-छोटे मकान तथा छोटे पगोडे ही दिखते हैं। नदियों की रेत में सोने के कण मिलते हैं, इसलिए आबादी काफी

है और इसी से बर्मी तथा काचिन लोगों की भिन्नता का पता चल जाता है।

काचिन प्रांत का दूसरा प्रमुख स्थान है भामो, जो बर्मा और चीन की सीमा के अत्यंत नज़दीक है। दोनों देशों के व्यापार का यह मुख्य केन्द्र रहा है। द्वितीय विश्व-युद्ध में कोमिंगतांग, चीन की सहायता के लिए अंग्रेज़ों ने जो सड़क बनाई थी वह इसी स्थान से होकर चीन की सीमा में जाती है। इस कस्बे का मुख्य धंधा जंगली लकड़ी काटना, चीरना तथा नदी के मार्ग से रंगून तक भेजना है। यहां चीनी व्यापारी पहले से बसे हुए हैं, लेकिन बर्मा और चीन के सम्बन्ध बिगड़ जाने के कारण दोनों देशों में व्यापार नहीं के बराबर है।

इस सीमा-क्षेत्र में अंग्रेज़ों ने द्वितीय विश्व-युद्ध के समय पहाड़ी सड़कें बनाई थीं और जगह-जगह सैनिक छावनियां कायम की थीं। भामो से 28 मील उत्तर में एक ऐसी छावनी सिनलुन-काब नामक एक बड़े गांव में है। यह स्थान भामो कस्बे से 6000 फुट की ऊंचाई पर है। यहां जाड़े में भारी बर्फ पड़ती है। देवदार के पेड़ों से घिरा यह क्षेत्र सुहावना लगता है।

सिनलुन-काब से सुदूर पूर्व में चीनी क्षेत्र दिखाई पड़ता है। चीन की ओर की सभी गतिविधियों को इस स्थान से देखने के लिए बर्मी सरकार ने भी अंग्रेज़ों के जाने के बाद यहां अपनी सैनिक चौकी रखी है। इस चौकी पर राडार यंत्र लगाए गए हैं, जिससे चीनी सेना की हवाई गतिविधि पर भी ध्यान रखा जा सके।

काचिन लोग जंगल में आग लगाकर इस क्षेत्र की ज़मीन को उपजाऊ बनाते हैं। जब आग बुझ जाती है, तब काचिन लोग उस क्षेत्र में बस जाते हैं और अपने छोटे-छोटे खेत बना लेते हैं। कुछ

बढ़ गई है और इस कस्बे का यही सबसे बड़ा धंधा है। यह पहाड़ी प्रदेश चीन की सीमा से लगा होने के कारण यहां चीनी लोग भी बड़ी संख्या में रहते हैं। लेकिन रंगून की भांति यहां काचिन और चीनी लोगों में झगड़े नहीं होते। आपस में विवाह भी होते हैं।

मिनकीना कस्बे से 28 मील उत्तर में इरावदी नदी का आरम्भ होता है। वहां दो छोटी पहाड़ी नदियां मिलकर इरावदी का नाम धारण करती हैं। इस संगम को काचिन लोग अपना बड़ा तीर्थ मानते हैं। वहां अनेक पगोडे हैं तथा वर्ष में एक बार मेला भी लगता है। इस स्थान पर नदी की रेत तथा पत्थरों में सोने के कण चमकते हैं और चटख धूप में इन कणों की चमक से सारा प्रदेश सुनहरा लगता है।

इस संगम से 180 मील उत्तर में बर्मा, चीन तथा भारत की सीमा मिलती है। इस स्थान पर अंग्रेज शासकों ने 'फोर्ट हर्ट्ज़' नामक सैनिक दुर्ग सीमा की रक्षा के लिए बनाया था, लेकिन अब इसका नाम पुटोआ रखा गया है। इस क्षेत्र के पहाड़ों पर सदा बर्फ जमी रहती है।

काचिन लोग गोरखों की भांति मजबूत-कद्दावर जवान होते हैं और बर्मी सेना में वे बड़ी संख्या में हैं। काचिन लोग हमेशा हरे या गुलाबी ऊनी पट्टी से बंधी लम्बी तलवार कंधे पर लटकाए रखते हैं। इन पहाड़ियों में लोगों का जीवन अत्यंत कठिन होता है, इसलिए शारीरिक कठोरता की भारी आवश्यकता उन्हें पड़ती है। उनके मकान पहाड़ों के सीधे ढालों पर होते हैं और उन्हें भागकर इन पहाड़ों पर चढ़ने और उतरने की आदत होती है।

काचिन लोगों का एक बड़ा त्योहार मनओ है, जब महिलाएं और पुरुष सामूहिक नृत्य करते हैं। यह नृत्य बर्मी नृत्य प्वू से भिन्न

रंगून से माण्डले जाने वाली रेल लाइन पर रंगून से 300 मील उत्तर में एक स्टेशन आता है—थाजी। वहां से ब्रांच लाइन श्वेनयोंग तक जाती है और इस स्थान से 10 मील दूर पहाड़ में तोंगई नगर है, जो दक्षिण शान प्रांत की राजधानी है। थाजी से श्वेनयोंग तक की रेल-लाइन प्रथम विश्वयुद्ध के समय तुर्क युद्धवन्दियों ने बड़ी मेहनत से बनाई थी। अंग्रेज़ लोग प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्क सैनिक बन्दियों को बर्मा लाए थे और वहां उनसे यह रेल-लाइन बनवाई थी। यह लाइन इंजीनियरी का चमत्कार मानी जाती है। कालो नामक स्थान पर रेल 4300 फुट की ऊंचाई तक जाती है। बर्मा में किसी भी स्थान पर इतनी ऊंचाई पर रेल-लाइन अब तक नहीं बनी।

यही कालो स्थान गर्मी के दिनों में बर्मा में रहने वाले अंग्रेज़ों के लिए शिमला था। वहां अंग्रेज़ी ढंग के मकान, बाग और गोल्फ के मैदान दिखाई पड़ते हैं। लेकिन अब यह स्थान आज़ादी के बाद लोकप्रिय नहीं रहा। अब मालदार बर्मी लोग तोंगई में गर्मियां बिताना पसंद करते हैं।

कालो से आगे ओंगबन कस्बा है जो मीठे संतरों के लिए सारे बर्मा में प्रसिद्ध है। यहां संतरों के बड़े-बड़े बाग हैं और रेल द्वारा संतरा देश के विभिन्न भागों को भेजा जाता है।

तोंगई की आबादी हाल के सालों में तेज़ी से बढ़ी है। अंग्रेज़ों के दिनों में वहां 30 हज़ार लोग रहते थे। 1963 तक जनसंख्या बढ़कर 58 हज़ार हुई और अब एक लाख से अधिक लोग इस नगर में रहते हैं। शान प्रांत के कार्यालयों की बड़ी-बड़ी इमारतें बनाई गई हैं तथा मालदार बर्मी लोगों ने यहां नये-नये ढंग के बंगले बनाए हैं। नगर को सुन्दर बनाने के लिए चौड़ी सड़कें बनाई गई हैं और उनके दोनों ओर फूलदार पौधे लगाए गए हैं।

वर्षों के बाद जब वह इलाका उपजाऊ नहीं रहता या पानी के स्रोत सूख जाते हैं, तब वे लोग पास के किसी अन्य जंगल में आग लगा देते हैं। आग से पेड़-पौधे जलकर राख हो जाते हैं और उसी राख पर वे नई बस्ती बनाते हैं। काचिन लोगों का यह प्राचीन तरीका आज तक चला आ रहा है।

आजकल शिक्षा के प्रचार के साथ-साथ आधुनिक रासायनिक उर्वरक भी आने लगे हैं। लेकिन ज़मीन अच्छी न होने के कारण पैदावार ज़्यादा नहीं हो पाती। सड़कों का विकास होने से अब फलों के बाग लगाए जाने लगे हैं और फलों को देश के अन्य भागों में भेजा जाने लगा है।

शान क्षेत्र

बर्मा का पूर्वी और पठारी प्रदेश पहले शान राज्य के रूप में था, लेकिन अब स्वतंत्र बर्मा में एक बड़ा प्रांत है। 54 हज़ार वर्गमील का यह क्षेत्र तीन हज़ार फुट ऊंचे प्राचीन पठार के रूप में है। शान प्रांत दो भागों में विभक्त है—उत्तरी शान और दक्षिणी शान। समस्त शान क्षेत्र बर्मा का सबसे बड़ा और सबसे सुन्दर प्रदेश है। इसी क्षेत्र में अनेक पहाड़ी कस्बे हैं जो अंग्रेज़ों के दिनों से ही गर्मी के मौसम में शिमला, नैनीताल और मसूरी की भांति बढ़ते-घटते हैं।

शान लोग बहुत-सी बातों में थाईलैण्ड के लोगों से मिलते-जुलते हैं लेकिन सदा ही बर्मा के इतिहास से बंधे रहे हैं। पागान साम्राज्य के पतन के बाद 300 वर्ष तक शान लोगों का स्वतंत्र राज्य रहा और बर्मा के मैदानों पर भी उनका अधिकार रहा। बाद में बर्मी राजाओं ने उन्हें ऊंचे पठारों में खदेड़ दिया, जहां वे तलवारें उतारकर किसान बन गए।

शान जाति की लड़कियां

तोंगई में सबसे प्रमुख आकर्षण केन्द्र इनले झील है जहां नावों को पैरों से चलाया जाता है। इस झील के चारों ओर लकड़ी के खम्भों पर छोटे-छोटे मकान बने हैं। मकानों के आसपास पानी के ऊपर बांस की चटाई पर मिट्टी बिछाकर उनपर खेती की जाती है। ऐसे तैरते खेत कश्मीर में भी दिखाई पड़ते हैं। छुटपन से ही बच्चे नाव चलाना सीख लेते हैं। नाव खेने का यहां अजीब तरीका है। एक टांग को पतवार के नीचे के हिस्से से लपेटा जाता है और नाव को हाथ से पकड़कर पैर के साथ पतवार चलाया जाता है। इस तरीके से नाव काफी तेज चलाई जाती है।

शान त्योहारों पर एक-एक नाव को 50-50 लोग पैरों से चलाते हैं। इसमें रंग-बिरंगे कपड़ों में महिलाएं भी हिस्सा लेती हैं। नावों की दौड़ इस स्थान का सबसे बड़ा और लोकप्रिय खेल है। नावों की दौड़ के समय तरह-तरह की आवाज़ें गूंजती हैं और जीत होने पर लोग पानी में कूदकर अठखेलियां करते हैं। बाद में इनाम बांटने का जल्सा होता है। फिर सैकड़ों नावें अपने-अपने गांव को लौटती हैं।

पैरों से चलने वाली नावें आपको कहीं नहीं दिखाई देंगी और न यहां की पादोंग कबीले की वे महिलाएं जो पीतल के कड़े पहनकर अपनी गर्दन जिराफ की भांति लम्बी कर लेती हैं। तरीका यह है कि लड़की को बचपन में पहला पीतल का कड़ा गले में पहनाया जाता है, और फिर धीरे-धीरे एक-एक कड़ा बढ़ाया जाता है। इस प्रकार उम्र के साथ-साथ गर्दन भी लम्बी होती जाती है। अगर इनकी गर्दन से कड़े निकाल दिए जाएं तो इनकी गर्दन लम्बी होने के कारण सीधी नहीं रह पाएगी और एक ओर को झुक जाएगी। यह प्रथा अब आधुनिक शिक्षा के साथ खत्म होती जा रही है।

उत्तरी शान क्षेत्र का प्रमुख केन्द्र लाशिओ है जहां तक माण्डले

7

धर्म और समाज

वर्मा की अधिकांश जनता बौद्ध धर्म की अनुयायी है और त्रिपिटक साहित्य वर्मी लोगों के बौद्ध धर्म का आधार है। इसे थिरवड़ शाखा भी कहते हैं। इसी शाखा के अनुयायी श्रीलंका, थाईलैण्ड कम्बोडिया और लाओस में हैं।

पगोडा और मठों में त्रिपिटक साहित्य का अध्ययन मूल पाली के अलावा वर्मी भाषा में भी किया जाता है। 40 मूल पाली खण्डों का 27 वर्मी खण्डों में अनुवाद किया गया है। अब प्रयत्न यह है कि वर्मी भाषा में ही सभी लोग पाठ करें और पूजा करें।

वर्मा में 83 बौद्ध विहार हैं जहां बौद्ध धर्म की शिक्षा दी जाती है। इस शिक्षा के बाद पाली पतम्वयन की डिग्री दी जाती है। 1955 में रंगून के शान्ति पगोडा में उच्चतम धार्मिक शिक्षा के लिए विश्व बौद्ध विश्वविद्यालय स्थापित किया गया है।

प्रत्येक वर्मी ग्राम में कम से कम एक बौद्ध विहार ज़रूर होता है। इसे वर्मी भाषा में फोंगई क्योंग कहते हैं। परम्परा के अनुसार प्रत्येक बालक सात वर्ष की आयु होने पर अपने गांव या कस्बे के बौद्ध विहार में एक निश्चित अवधि के लिए आवश्यक रूप से दीक्षा लेता है। इसके लिए 15 दिन से लेकर कुछ साल तक विहार में शिक्षा लेना ज़रूरी है। इसे 'शिन्प्यू' दीक्षा कहते हैं। अगर गरीब

से छोटी रेल-लाइन आती है। यह भी भामो की भांति चीन से व्यापार का एक मुख्य केन्द्र है। क्षेत्र का उत्तरी कस्बा नामखाम है जो चीन की सीमा से लगा है और चीन की ओर से ऊंचाई पर स्थित है। शान लोगों को काले पाजामे तथा बांस की टोकरी जैसे टोप लगाए और बांस का लम्बा पाइप पीते बड़ी संख्या में यहां देखा जा सकता है। महिलाएं अपनी पीठ पर छोटे बच्चों की पोटली बांधे और सर पर बोझ रखे दिखाई पड़ती हैं।

उत्तरी शान क्षेत्र में घर-घर में करघे लगे हैं और हाथ के बुने रंग-बिरंगे वस्त्रों को वर्मा के मैदानों में बेचा जाता है। पहाड़ी लोग जंगलों की लकड़ी तथा फूलों से पक्के रंग बनाते हैं और सूत को उनसे रंगकर कपड़े बुनते हैं। करघे लकड़ी के होते हैं तथा हाथ-पैर से चलाए जाते हैं।

लाशिओ के गर्म पानी के सोते इलाज के लिए सारे वर्मा में प्रसिद्ध हैं। इन सोतों का गंधक का पानी अनेक बीमारियों में मुफीद है।

शान क्षेत्र छोटे-छोटे राजाओं में बंटा हुआ था लेकिन आज़ादी के बाद सभी राजाओं के अधिकार सरकार ने ले लिए हैं और उन्हें कुछ जेब-खर्च दिया जाता है।

7
धर्म और समाज

बर्मा की अधिकांश जनता बौद्ध धर्म की अनुयायी है और त्रिपिटक साहित्य बर्मी लोगों के बौद्ध धर्म का आधार है। इसे थिरवड़ शाखा भी कहते हैं। इसी शाखा के अनुयायी श्रीलंका, थाईलैण्ड कम्बोडिया और लाओस में हैं।

पगोडा और मठों में त्रिपिटक साहित्य का अध्ययन मूल पाली के अलावा बर्मी भाषा में भी किया जाता है। 40 मूल पाली खण्डों का 27 बर्मी खण्डों में अनुवाद किया गया है। अब प्रयत्न यह है कि बर्मी भाषा में ही सभी लोग पाठ करें और पूजा करें।

बर्मा में 83 बौद्ध विहार हैं जहां बौद्ध धर्म की शिक्षा दी जाती है। इस शिक्षा के बाद पाली पतम्बयन की डिग्री दी जाती है। 1955 में रंगून के शान्ति पगोडा में उच्चतम धार्मिक शिक्षा के लिए विश्व बौद्ध विश्वविद्यालय स्थापित किया गया है।

प्रत्येक बर्मी ग्राम में कम से कम एक बौद्ध विहार ज़रूर होता है। इसे बर्मी भाषा में फोंगई क्योंग कहते हैं। परम्परा के अनुसार प्रत्येक बालक सात वर्ष की आयु होने पर अपने गांव या कस्बे के बौद्ध विहार में एक निश्चित अवधि के लिए आवश्यक रूप से दीक्षा लेता है। इसके लिए 15 दिन से लेकर कुछ साल तक विहार में शिक्षा लेना ज़रूरी है। इसे 'शिन्प्यू' दीक्षा कहते हैं। अगर गरीब

से छोटी रेल-लाइन आती है। यह भी भामो की भांति चीन से व्यापार का एक मुख्य केन्द्र है। क्षेत्र का उत्तरी कस्बा नामखाम है जो चीन की सीमा से लगा है और चीन की ओर से ऊंचाई पर स्थित है। शान लोगों को काले पाजामे तथा बांस की टोकरी जैसे टोप लगाए और बांस का लम्बा पाइप पीते बड़ी संख्या में यहां देखा जा सकता है। महिलाएं अपनी पीठ पर छोटे बच्चों की पोटली बांधे और सर पर बोझ रखे दिखाई पड़ती हैं।

उत्तरी शान क्षेत्र में घर-घर में करघे लगे हैं और हाथ के बुने रंग-बिरंगे वस्त्रों को वर्मा के मैदानों में बेचा जाता है। पहाड़ी लोग जंगलों की लकड़ी तथा फूलों से पक्के रंग बनाते हैं और सूत को उनसे रंगकर कपड़े बुनते हैं। करघे लकड़ी के होते हैं तथा हाथ-पैर से चलाए जाते हैं।

लाशिओ के गर्म पानी के सोते इलाज के लिए सारे वर्मा में प्रसिद्ध हैं। इन सोतों का गंधक का पानी अनेक बीमारियों में मुफीद है।

शान क्षेत्र छोटे-छोटे राजाओं में बंटा हुआ था लेकिन आज़ादी के बाद सभी राजाओं के अधिकार सरकार ने ले लिए हैं और उन्हें कुछ जेब-खर्च दिया जाता है।

7
धर्म और समाज

बर्मा की अधिकांश जनता बौद्ध धर्म की अनुयायी है और त्रिपिटक साहित्य बर्मी लोगों के बौद्ध धर्म का आधार है। इसे थिरवड़ शाखा भी कहते हैं। इसी शाखा के अनुयायी श्रीलंका, थाईलैण्ड कम्बोडिया और लाओस में हैं।

पगोडा और मठों में त्रिपिटक साहित्य का अध्ययन मूल पाली के अलावा बर्मी भाषा में भी किया जाता है। 40 मूल पाली खण्डों का 27 बर्मी खण्डों में अनुवाद किया गया है। अब प्रयत्न यह है कि बर्मी भाषा में ही सभी लोग पाठ करें और पूजा करें।

बर्मा में 83 बौद्ध विहार हैं जहां बौद्ध धर्म की शिक्षा दी जाती है। इस शिक्षा के बाद पाली पतम्बयन की डिग्री दी जाती है। 1955 में रंगून के शान्ति पगोडा में उच्चतम धार्मिक शिक्षा के लिए विश्व बौद्ध विश्वविद्यालय स्थापित किया गया है।

प्रत्येक बर्मी ग्राम में कम से कम एक बौद्ध विहार ज़रूर होता है। इसे बर्मी भाषा में फोंगई क्योंग कहते हैं। परम्परा के अनुसार प्रत्येक बालक सात वर्ष की आयु होने पर अपने गांव या कस्बे के बौद्ध विहार में एक निश्चित अवधि के लिए आवश्यक रूप से दीक्षा लेता है। इसके लिए 15 दिन से लेकर कुछ साल तक विहार में शिक्षा लेना ज़रूरी है। इसे 'शिन्प्यू' दीक्षा कहते हैं। अगर गरीब

से छोटी रेल-लाइन आती है। यह भी भामो की भांति चीन से व्यापार का एक मुख्य केन्द्र है। क्षेत्र का उत्तरी कस्बा नामखाम है जो चीन की सीमा से लगा है और चीन की ओर से ऊंचाई पर स्थित है। शान लोगों को काले पाजामे तथा वांस की टोकरी जैसे टोप लगाए और वांस का लम्बा पाइप पीते बड़ी संख्या में यहां देखा जा सकता है। महिलाएं अपनी पीठ पर छोटे बच्चों की पोटली बांधे और सर पर बोझ रखे दिखाई पड़ती हैं।

उत्तरी शान क्षेत्र में घर-घर में करघे लगे हैं और हाथ के बुने रंग-बिरंगे वस्त्रों को वर्मा के मैदानों में बेचा जाता है। पहाड़ी लोग जंगलों की लकड़ी तथा फूलों से पक्के रंग बनाते हैं और सूत को उनसे रंगकर कपड़े बुनते हैं। करघे लकड़ी के होते हैं तथा हाथ-पैर से चलाए जाते हैं।

लाशिओ के गर्म पानी के सोते इलाज के लिए सारे वर्मा में प्रसिद्ध हैं। इन सोतों का गंधक का पानी अनेक बीमारियों में मुफीद है।

शान क्षेत्र छोटे-छोटे राजाओं में बंटा हुआ था लेकिन आज़ादी के बाद सभी राजाओं के अधिकार सरकार ने ले लिए हैं और उन्हें कुछ जेब-खर्च दिया जाता है।

वर्मा में वचपन में ही वौद्ध धर्म की दीक्षा दे दी जाती है।
इसको 'शिन्प्यू' कहते हैं। इस समारोह का एक दृश्य।

परिवार का बालक इस दीक्षा की फीस न दे पाए तो गांव के अमीर लोग फीस देने के लिए आगे आते हैं।

गांव के जीवन में फोंगई क्योंग तथा पगोडे का अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण स्थान होता है। सभी लोग इन्हीं में अपनी आरम्भिक शिक्षा प्राप्त करते हैं और फिर सारा जीवन इन्हीं धर्म-स्थानों में आते-जाते रहते हैं। भिक्षु तथा भिक्षुणियां समय-समय पर धार्मिक अनुष्ठान करते हैं और पूरा गांव उनमें शामिल होता है।

बर्मी लोगों के प्रायः सभी त्यौहार धार्मिक हैं। भारत की भांति बर्मा में भी हर महीने कोई न कोई त्यौहार मनाया जाता है।

बर्मा का सबसे बड़ा त्यौहार बौद्ध वर्ष शुरू होने पर मनाया जाता है। जुलाई के महीने में बर्मी मास 'वासो' पड़ता है और तब पूर्ण चन्द्र होता है। वासो त्यौहार का अर्थ है कि उस समय भगवान बुद्ध स्वर्ग गए और वहां अभिधर्म का पाठ देवों को दिया।

वासो त्यौहार के दिनों में भिक्षुओं और पोंगई लोगों को नये वस्त्र तथा आवश्यक वस्तुएं दी जाती हैं। तीन महीने तक उपवास किए जाते हैं। इन मास में विवाह नहीं किए जाते और मकान भी नहीं बदले जाते।

तीन मास की समाप्ति पर दिवाली का त्यौहार होता है जो आम तौर पर थाडिंगयुन (अक्तूबर) में पड़ता है। इसीलिए इस त्यौहार को थाडिंगयुन ही कहते हैं। यह अत्यन्त रंगीन त्यौहार है। यह समारोह तीन दिन तक चलता है और इन दिनों सभी बर्मी घरों, पगोडों और बौद्ध विहारों में दीये जलाए जाते हैं। बर्मी लोग इन दिनों नये-नये रंग-बिरंगे कपड़े पहनते हैं, गरीबों को खाना और कपड़े बांटते हैं तथा सम्बन्धियों और मित्रों को दावत देते हैं।

13 अप्रैल के आस-पास बर्मा का नया साल शुरू होता है। उस

प्राप्त की थी। 27 मार्च को सेना दिवस होता है। 27 मार्च, 1945 को वर्मी जनता ने जापानियों के खिलाफ सशस्त्र आन्दोलन शुरू किया था। 19 जुलाई को शहीद दिवस होता है। 1947 में इसी दिन आंग सान तथा उनके मंत्रिमण्डल के साथियों की हत्या की गई थी।

वर्मी पंचांग

वर्मी वर्ष के महीने चांद के आधार पर हैं तथा 29 और 30 दिन के 12 महीने होते हैं। अंग्रेज़ी कलेण्डर के अनुसार इन वर्मी महीनों के नाम इस प्रकार हैं :

(1)	तागू	(मार्च-अप्रैल)
(2)	कसोन	(अप्रैल-मई)
(3)	नायोग	(मई-जून)
(4)	वासो	(जून-जुलाई)
(5)	वागोंग	(जुलाई-अगस्त)
(6)	तोथालिन	(अगस्त-सितम्बर)
(7)	थाडिगयुन	(सितम्बर-अक्तूबर)
(8)	ताजोंगमोन	(अक्तूबर-नवम्बर)
(9)	नादो	(नवम्बर-दिसम्बर)
(10)	प्याथो	(दिसम्बर-जनवरी)
(11)	तावोद्वे	(जनवरी-फरवरी)
(12)	तावोंग	(फरवरी-मार्च)

वर्मा में किसी प्रकार का जातीय भेदभाव नहीं पाया जाता। त्यौहारों के अवसर पर सभी लोग एकसाथ खाते-पीते हैं। पगोडों में किसी को पूजा में प्राथमिकता नहीं मिलती। सभी बारी-बारी से पूजा कर सकते हैं। शादी-विवाह में भी किसी प्रका

समय थिजान त्यौहार मनाया जाता है जो तीन दिन तक चलता है। यह तारीख वर्मी पंचांग के अनुसार हर साल बदलती रहती है। इस त्यौहार को जल त्यौहार भी कहते हैं।

इस त्यौहार में सवेरे बुद्ध-प्रतिमाएं इत्र या गुलाव-जल में पखारी जाती हैं। धर्मगुरुओं को दावत दी जाती है। इस त्यौहार को वर्मा की होली भी कह सकते हैं क्योंकि तीन दिन तक वर्मी लोग एक-दूसरे पर जल-वर्षा करते हैं। जगह-जगह ऐसे मंच वनाए जाते हैं जिनसे पानी फेंका जाता है। लोगों को भोजन कराया जाता है।

मई के आरम्भ में कसोन मास के पूर्ण चन्द्र के दिन 'कसोन न्योंग ई' त्यौहार होता है। इसी दिन भगवान बुद्ध ने वट वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया था। इसलिए इस त्यौहार पर वट वृक्ष पर पानी चढ़ाया जाता है।

नवम्वर के मध्य में 'ताजुगंडेंग' त्यौहार होता है। इस अवसर पर भी दीए जलाए जाते हैं। गुब्बारे उड़ाने का भी यही अवसर है। भिक्षुओं को उनकी आवश्यकता की चीज़ें दी जाती हैं।

वालकों को वौद्ध विहार की दीक्षा लेने के लिए कोई समय निर्धारित नहीं। जव भी वालक सात वर्ष का होता है उसे दीक्षा दी जाती है। इस समारोह को 'शिन्प्यू' कहते हैं। वालकों का सर मूंडा जाता है। लड़कियों के कान भी इसी अवसर पर छेदे जाते हैं। लड़के का पिता दावत देता है। वौद्ध विहार को भेंट भी चढाते हैं।

धार्मिक त्योहारों के अलावा चार राष्ट्रीय दिवस मनाए जाते हैं। आज़ादी दिवस 4 जनवरी को मनाया जाता है। 1948 में इसी दिन वर्मा को व्रिटिश दासता से आज़ादी मिली थी।

12 फरवरी को संघ दिवस मनाया जाता है। 12 फरवरी, 1947 को वर्मा के राष्ट्रपिता आंग सान ने सभी कवीलों की एकता

प्राप्त की थी। 27 मार्च को सेना दिवस होता है। 27 मार्च, 194: को वर्मी जनता ने जापानियों के खिलाफ सशस्त्र आन्दोलन शुरू किय था। 19 जुलाई को शहीद दिवस होता है। 1947 में इसी दिन आं सान तथा उनके मंत्रिमण्डल के साथियों की हत्या की गई थी।

बर्मी पंचांग

वर्मी वर्ष के महीने चांद के आधार पर हैं तथा 29 और 3(दिन के 12 महीने होते हैं। अंग्रेज़ी कलेण्डर के अनुसार इन बर्म महीनों के नाम इस प्रकार हैं :

(1)	तागू	(मार्च-अप्रैल)
(2)	कसोन	(अप्रैल-मई)
(3)	नायोग	(मई-जून)
(4)	वासो	(जून-जुलाई)
(5)	वागोंग	(जुलाई-अगस्त)
(6)	तोथालिन	(अगस्त-सितम्बर)
(7)	थाडिंगयुन	(सितम्बर-अक्तूबर)
(8)	ताजोंगमोन	(अक्तूबर-नवम्बर)
(9)	नादो	(नवम्बर-दिसम्बर)
(10)	प्याथो	(दिसम्बर-जनवरी)
(11)	तावोद्वे	(जनवरी-फरवरी)
(12)	ताबोंग	(फरवरी-मार्च)

वर्मा में किसी प्रकार का जातीय भेदभाव नहीं पाया जाता। त्यौहारों के अवसर पर सभी लोग एकसाथ खाते-पीते हैं। पगोडों में किसी को पूजा में प्राथमिकता नहीं मिलती। सभी वारी-वारी से पूजा कर सकते हैं। शादी-विवाह में भी किसी प्रकार की ऊंच-

समय थिञान त्यौहार मनाया जाता है जो तीन दिन तक चलता है। यह तारीख वर्मी पंचांग के अनुसार हर साल वदलती रहती है। इस त्यौहार को जल त्यौहार भी कहते हैं।

इस त्यौहार में सवेरे बुद्ध-प्रतिमाएं इत्र या गुलाव-जल में पखारी जाती हैं। धर्मगुरुओं को दावत दी जाती है। इस त्यौहार को वर्मा की होली भी कह सकते हैं क्योंकि तीन दिन तक वर्मी लोग एक-दूसरे पर जल-वर्षा करते हैं। जगह-जगह ऐसे मंच वनाए जाते हैं जिनसे पानी फेंका जाता है। लोगों को भोजन कराया जाता है।

मई के आरम्भ में कसोन मास के पूर्ण चन्द्र के दिन 'कसोन न्योंग ई' त्यौहार होता है। इसी दिन भगवान बुद्ध ने वट वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया था। इसलिए इस त्यौहार पर वट वृक्ष पर पानी चढ़ाया जाता है।

नवम्वर के मध्य में 'ताजुगंडेंग' त्यौहार होता है। इस अवसर पर भी दीए जलाए जाते हैं। गुव्वारे उड़ाने का भी यही अवसर है। भिक्षुओं को उनकी आवश्यकता की चीज़ें दी जाती हैं।

वालकों को वौद्ध विहार की दीक्षा लेने के लिए कोई समय निर्धारित नहीं। जव भी वालक सात वर्ष का होता है उसे दीक्षा दी जाती है। इस समारोह को 'शिन्प्यू' कहते हैं। वालकों का सर मूंडा जाता है। लड़कियों के कान भी इसी अवसर पर छेदे जाते हैं। लड़के का पिता दावत देता है। वौद्ध विहार को भेंट भी चढाते हैं।

धार्मिक त्यौहारों के अलावा चार राष्ट्रीय दिवस मनाए जाते हैं। आज़ादी दिवस 4 जनवरी को मनाया जाता है। 1948 में इसी दिन वर्मा को व्रिटिश दासता से आज़ादी मिली थी।

12 फरवरी को संघ दिवस मनाया जाता है। 12 फरवरी, 1947 को वर्मा के राष्ट्रपिता आंग सान ने सभी कवीलों की एकता

४

महिलाओं की स्थिति

किसी देश और समाज को जानने के लिए यह जरूरी है कि उस देश और समाज की महिलाओं की स्थिति जानी जाए। वर्मा की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं का उच्च तथा प्रमुख स्थान है। इस देश में पर्दा प्रथा कभी नहीं रही और महिलाएं सभी कामों में पुरुषों से कहीं ज़्यादा संख्या में लगी दिखलाई पड़ती हैं। वे गांवों में खेती से लेकर नगरों की दुकानों, कारखानों आदि में सभी जगह पुरुषों से कंधे से कंधा लगाकर काम करती हैं। कुछ विदेशियों का तो यहां तक कहना है कि सारा वर्मी समाज महिलाओं के बल पर ही खड़ा है।

एक मनोरंजक बात यह है कि कुछ वर्मी कबीलों में महिलाएं ही वाहर का सारा काम करती हैं और पुरुष घरों में बच्चों की देख-भाल करते हैं। लेकिन यह प्रथा अब केवल कुछ दूर-दूर पहाड़ी क्षेत्रों में ही रह गई है। नये वर्मा में पुरुष और स्त्री दोनों ही सब तरह के काम करते हैं। नया तरीका तो यह होता जा रहा है कि ताकत के सभी कामों पर पुरुष और हल्के काम पर महिलाओं को लगाया जाता है—जैसे सड़क वनाने, फौलाद के कारखानों में तथा नहरें आदि वनाने के काम में केवल पुरुष ही लगाए जाते हैं। लेकिन खेती के काम में अभी भी महिलाएं ही अधिक दिखाई देती हैं।

नीच नहीं दिखाई पड़ती।

बर्मी पुरुषों और महिलाओं के नामों के आगे किसी जाति या परिवार का नाम नहीं होता, केवल व्यक्तिगत नाम ही होता है। आयु के हिसाब से नाम के आगे सम्बोधन दिया जाता है। जैसे भाई के लिए 'मोंग', बड़े भाई के लिए 'को', बहन के लिए 'मा', चाची के लिए 'दो' और सभी बड़े-बूढ़ों के लिए 'ऊ'। इस प्रकार यदि किसी का नाम 'सीन' है तो जब वह बच्चा होगा तब उसे 'मोंग सीन' कहा जाएगा; बड़ा होने पर 'को सीन' तथा बूढ़ा होने पर 'ऊ सीन' पुकारा जाएगा।

बर्मी वाद्य और गायन

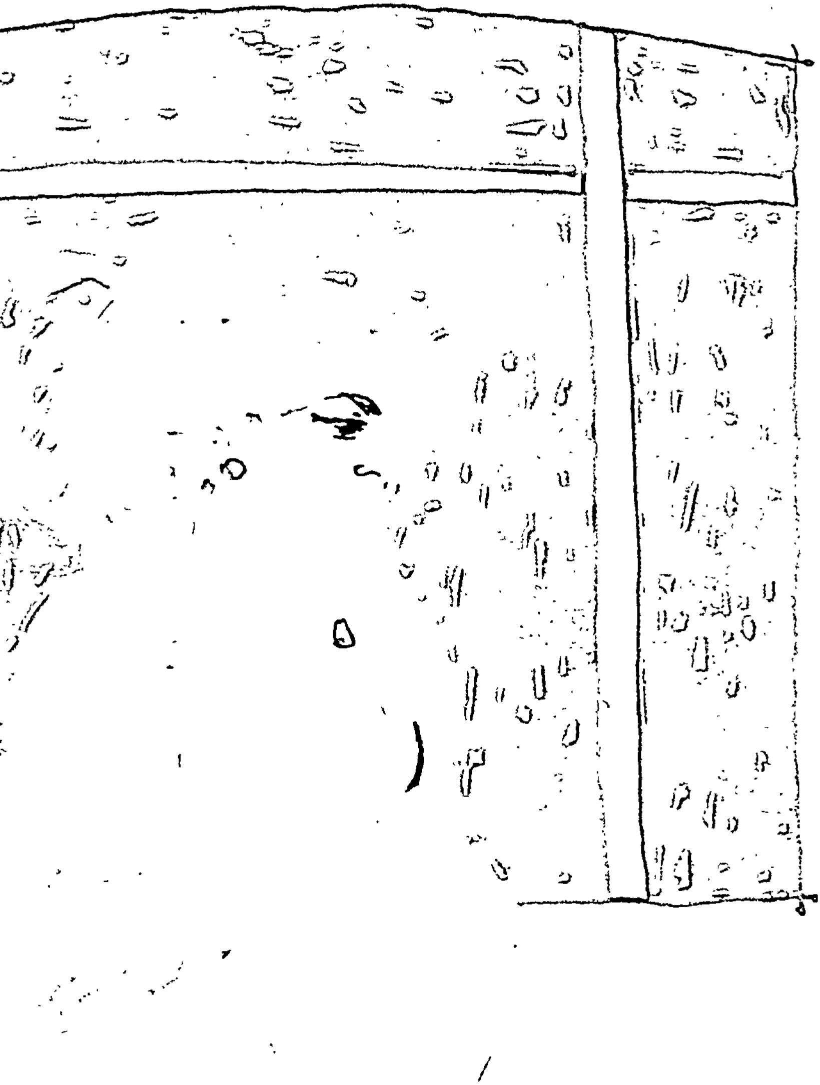

एको जाति की स्त्री

बर्मा कृपि-प्रधान देश है और 80 प्रतिशत लोग ग्रामों में रहकर खेती करते हैं। खेती मुख्य रूप से चावल की होती है और धान रोपने, काटने और कूटने के काम में मुख्य रूप से महिलाएं ही लगी दिखाई पड़ती हैं। पुरुप घर बनाते हैं, फर्नीचर बनाते हैं, जंगल में लकड़ी काटने और चीरने का काम करते हैं। जब फसल आ जाती है तब पुरुप उसे बेचने पास के कस्बे में जाते हैं। फसल कटने के बाद महिलाएं घरेलू कामों की ओर अधिक ध्यान देती हैं—जैसे लिपाई, पुताई, कपड़े सीना, बुनना आदि।

बौद्ध धर्म ने पुरुपों और महिलाओं में ऊंच-नीच न मानने की शिक्षा दी लेकिन परम्परा से बर्मी समाज में महिलाओं का स्थान पुरुपों से ऊचा रहा। इसीलिए घर में सम्पत्ति का मालिक पुरुप न होकर महिलाएं होती हैं, हालांकि कानून के अनुसार पति को सम्पत्ति का मालिक होने का अधिकार है। व्यवस्था यह है कि घर की माता सारी सम्पत्ति की अधिकारी होती है और उसकी मृत्यु पर लड़कों की बहुओं को वह सम्पत्ति मिलती है। लेकिन यह व्यवस्था अब ग्रामों में ही रह गई है। शहरों में परिवार छोटे होते जाते हैं और पुरुप ही सम्पत्ति का मालिक होता जाता है।

बर्मा में विवाह अत्यन्त आसान है और कुछ कबीलों को छोड़कर कहीं भी दहेज की प्रथा नहीं। करेन और शान कबीलों में लड़के का परिवार लड़की के परिवार को कुछ धन देता है। लेकिन अधिकांश मैदानी प्रदेश में ऐसी व्यवस्था नहीं। मैदानी क्षेत्र में परिवार के लोग लड़के और लड़की का विवाह पक्का कर देते हैं और फिर लड़की को यह सुविधा दी जाती है कि यदि वह लड़के को पसन्द न करे तो विवाह करने से इन्कार कर दे। ऐसी अवस्था में परिवार के लोग किसी अन्य लड़के से उसका विवाह कर देते हैं। ग्रामों में प्रेम-विवाह

और नगरों में सब्ज़ी बेचने और खरीदने का काम मुख्य रूप से महिलाएं ही करती हैं।

बर्मा के कुछ पहाड़ी क्षेत्रों में अब भी बहुपति विवाह की प्रथा है। एक स्त्री कई पति कर लेती है। इसका कारण शायद यह है कि उन क्षेत्रों में लड़कियों की कमी है। मैदानी क्षेत्रों में आरम्भ से ही एक पति और एक पत्नी की परम्परा है। लेकिन महिलाएं विधवा होने पर अपनी इच्छा से विवाह कर सकती हैं और अपनी इच्छा से संन्यासी जीवन भी बिता सकती हैं।

महिलाओं की इस आज़ादी का ही यह परिणाम है कि बर्मा में वेश्याएं नहीं दिखलाई पड़तीं। बर्मी समाज में अनाचार को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

बर्मा में महिलाएं उच्च से उच्च पदों पर नियुक्त की जाती हैं। अभी हाल तक भारत में बर्मा की राजदूत श्रीमती आंग सान थीं। उन्होंने देश की आज़ादी की लड़ाई में प्रमुख भाग लिया था। जब तक बर्मा में संसद् रही, उसमें बड़ी संख्या में महिलाएं सदस्या थीं।

बर्मा में महिलाओं और पुरुषों का पहनावा एक-सा ही है। नीचे लुंगी और उसके ऊपर अंगरखा जिसे सारोंग कहते हैं। फर्क इतना ही है कि पुरुषों की लुंगी और अंगरखा सफेद तथा महिलाओं के रंग-बिरंगे होते हैं। पुरुष अपने सर पर सफेद रूमाल बांधते हैं और महिलाएं लम्बी चोटी रखती हैं। बालों में फूल गूंथने का भी रिवाज है। वर्षा ज़्यादा होती है, इसलिए महिलाए तथा पुरुष दोनों ही चप्पल पहनते हैं। ग्रामों में नंगे पैर रहने का भी रिवाज है।

बर्मी महिलाएं गृह-कलाओं में अभ्यस्त होती हैं। कपड़े पर कसीदाकारी, बांस और बेंत की अनेक चीज़ें बड़ी मोहक बनाई जाती हैं। घरों को सफेद तथा रंगीन बेल-बूटों से सजाया जाता है।

की प्रथा भी है। लड़का और लड़की बुद्ध-विहार या पगोडा में मिलते हैं और आपस में विवाह करने का निश्चय कर लेते हैं। फिर दोनों के परिवार उसकी स्वीकृति दे देते हैं।

चूंकि बर्मा में जाति प्रथा नहीं, इसीलिए सभी लोग समान स्तर के माने जाते हैं और कोई भी किसी से विवाह कर सकता है। आम तौर से एक ही गांव के लड़के-लड़कियों में विवाह होते हैं। शहरों में साथ-साथ पढ़ने वाले लड़के-लड़कियां भी आपस में विवाह कर लिया करते हैं।

बर्मी लोगों के विवाहों में ज़्यादा खर्च नहीं होता। बौद्ध पंडित विवाह की रस्म अदा करता है और सम्बन्धियों को जलपान कराया जाता है। मित्र लोग नव दम्पती को भेंट भी देते हैं, लेकिन ऐसा करना ज़रूरी नहीं है। शहरों में कानून से रजिस्टर कराके विवाह करने की भी व्यवस्था है, लेकिन इस रीति का उपयोग कम ही किया जाता है। तलाक लेना बर्मा में अत्यन्त आसान है लेकिन फिर भी तलाक लेने वालों की संख्या कम है।

भारत की तरह बर्मा की महिलाओं में अशिक्षा नहीं है। सभी लड़कियां लड़कों के साथ गांव के प्राथमिक स्कूल में शिक्षा पाती हैं। माध्यमिक स्तर तक सभी लड़के और लड़कियों के लिए शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क है। केवल बौद्ध विहारों में लड़कों के लिए कुछ समय तक धार्मिक शिक्षा अनिवार्य है। लड़कियों को धार्मिक शिक्षा घर की माताएं देती हैं। लड़कियां कालेजों और विश्व-विद्यालयों में उच्च शिक्षा लेने कम ही जाती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि वे बड़ी होने पर घर के काम-काज में हाथ बंटाने लगती हैं।

बर्मा में कई व्यापार ऐसे हैं जिनमें केवल महिलाएं ही दिखाई पड़ती हैं—जैसे सब्ज़ी बेचना, चाय की दुकान चलाना आदि। ग्रामों

आलोंगपाया राजवंश के दिनों में वर्मी साहित्य का विशेष रूप से विकास हुआ। इतिहास, कविता, नाटक, कहानियां आदि बड़ी संख्या में लिखी गई। विधिशास्त्र पर भी अनेक ग्रन्थ इसी काल में लिखे गए। नाटकों में पद्य तथा गद्य का सम्मिश्रण सफलतापूर्वक किया गया। समूह-नृत्यों में गीत तो इतने लोकप्रिय हुए कि आज तक गांव-गांव में गाए जाते हैं।

राजपरिवार की प्रेमकथाएं, प्रेमपत्र आदि बड़ी संख्या में लिखे गए और अत्यन्त लोकप्रिय हुए।

आज का वर्मी साहित्य गद्य-प्रधान है और वैज्ञानिक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें लिखी जा रही हैं। वर्मी साहित्य आज इतना समृद्ध है कि ऊंची से ऊंची शिक्षा मातृ-भाषा में दी जाने लगी है।

शिक्षा और संस्कृति का बड़ा केन्द्र माण्डले नगर है, जो उत्तरी वर्मा में है। इसे वर्मा की सांस्कृतिक राजधानी भी मानते हैं। इस नगर के उच्च विद्यालयों में विदेशी छात्र भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने आते हैं।

वर्मी लोग पढ़ने के कितने शौकीन हैं, इसका पता इस तथ्य से लगता है कि छोटे-से वर्मा देश में 1969 में चार हज़ार नई पुस्तकें प्रकाशित की गई थीं।

वर्मा के अधिकांश समाचारपत्र वर्मी भाषा में निकलते हैं। वैसे भारत की भांति वहां भी अंग्रेज़ी भाषा के समाचारपत्र हैं। वर्मी भाषा के समाचारपत्र बड़ी संख्या में प्रकाशित होते हैं। इनका मुख्य केन्द्र रंगून है, जहां से वर्मी के 6 तथा अंग्रेज़ी के 6 समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं। माण्डले तथा अन्य केन्द्रों से केवल वर्मी भाषा में ही पत्र निकलते हैं।

वर्मी भाषा के अलावा शान, काचिन, चिन, लाहू, करेन, मोन

9
साहित्य और कला

बर्मी भाषा तिब्बती-चीनी परिवार की है लेकिन चीनी भाषा की भांति बर्मी भाषा चित्र-प्रधान नहीं है। बर्मी भाषा की अपनी लिपि और वर्णमाला है। चीनी की भांति शब्दों के उच्चारण से अर्थ बदल जाता है।

बर्मी भाषा में लगभग 12 हज़ार शब्द ऐसे हैं जो तिब्बती और चीनी भाषा में भी हैं। एक हज़ार शब्दों का मूल तिब्बती है। पाली तथा संस्कृत के शब्द भी बड़ी संख्या में हैं। आधुनिक बर्मी भाषा में अंग्रेज़ी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं के शब्द बड़ी संख्या में आ गए हैं। वैज्ञानिक शब्दावली तो अंग्रेज़ी पर ही आधारित है। लिखित भाषा सारे देश में एक-सी है लेकिन बोल-चाल की भाषा में विभिन्न इलाकों में फ़र्क है।

16वीं शताब्दी से बर्मा देश की साहित्यिक भाषा बर्मी रही है। चूंकि शिक्षा के केन्द्र बौद्ध विहार रहे हैं, इसलिए धार्मिक साहित्य बड़ी मात्रा में है। आरम्भिक साहित्य त्रिपिटक के पाली से बर्मी में अनुवाद हैं। बर्मी भाषा का व्याकरण पाली तथा संस्कृत पर आधारित है। पद्य साहित्य तो पाली तथा संस्कृत से बहुत अधिक प्रभावित है। संस्कृत की प्रायः सभी प्रमुख रचनाओं के स्वतन्त्र अनुवाद बर्मी भाषा में हैं। अधिकांश पद्यानुवाद हैं।

तथा अराकानी भाषाएं भी समृद्धि कर रही हैं। इन भाषाओं पर वर्मी का प्रभाव इतना ज़्यादा पड़ रहा है कि कुछ वर्षों में ये भाषाएं सम्भवतः वर्मी में मिल जाएंगी।

वर्मी फिल्मों ने राष्ट्रभाषा के प्रचार में भारी योग दिया है। अल्पसंख्यकों के पहाड़ी इलाकों में वर्मी भाषा की फिल्मों से इस भाषा के प्रसार में आसानी हुई है।

कला और शिल्प

कला और शिल्प वर्मा के निवासियों के जीवन में सहज रूप से समाए हुए हैं। कला और शिल्प तथा धर्म के ज़रिये ही लोग अपनी आत्मा को ज़िन्दा रख सके और विदेशी शासन भी इस परम्परा को नहीं तोड़ सका। अंग्रेज़ों ने कला और शिल्प को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया, लेकिन वौद्ध विहारों और गांवों का जीवन इनको पालता-पोसता रहा। इससे आम जनता का जीवन रंगीन बना रहा। विभिन्न जातियों ने अपनी कलाओं और शिल्प को एक ओर तो मूल रूप में जीवित रखा; दूसरी ओर अन्य वर्मी जातियों से सीखकर उन्हें बढ़ाया।

मोन प्यू, अमा तथा शान संस्कृतियों का वर्मा में संगम हुआ और इस संगम से वर्मी कलाओं और शिल्प का उत्थान हुआ। ग्यारहवीं शताब्दी में पागान राज परिवार का उदय हुआ और उसी के साथ कलाओं और शिल्प का स्वर्ण युग आया। भवन-निर्माण, चित्रकला, संगीतकला, मूर्तिकला और वर्तन बनाने की कलाओं का प्रसार हुआ और इनमें निखार आया। सभी कलाओं को धर्म से

ढोलक पर नाच—
आर्केस्ट्रा के साथ

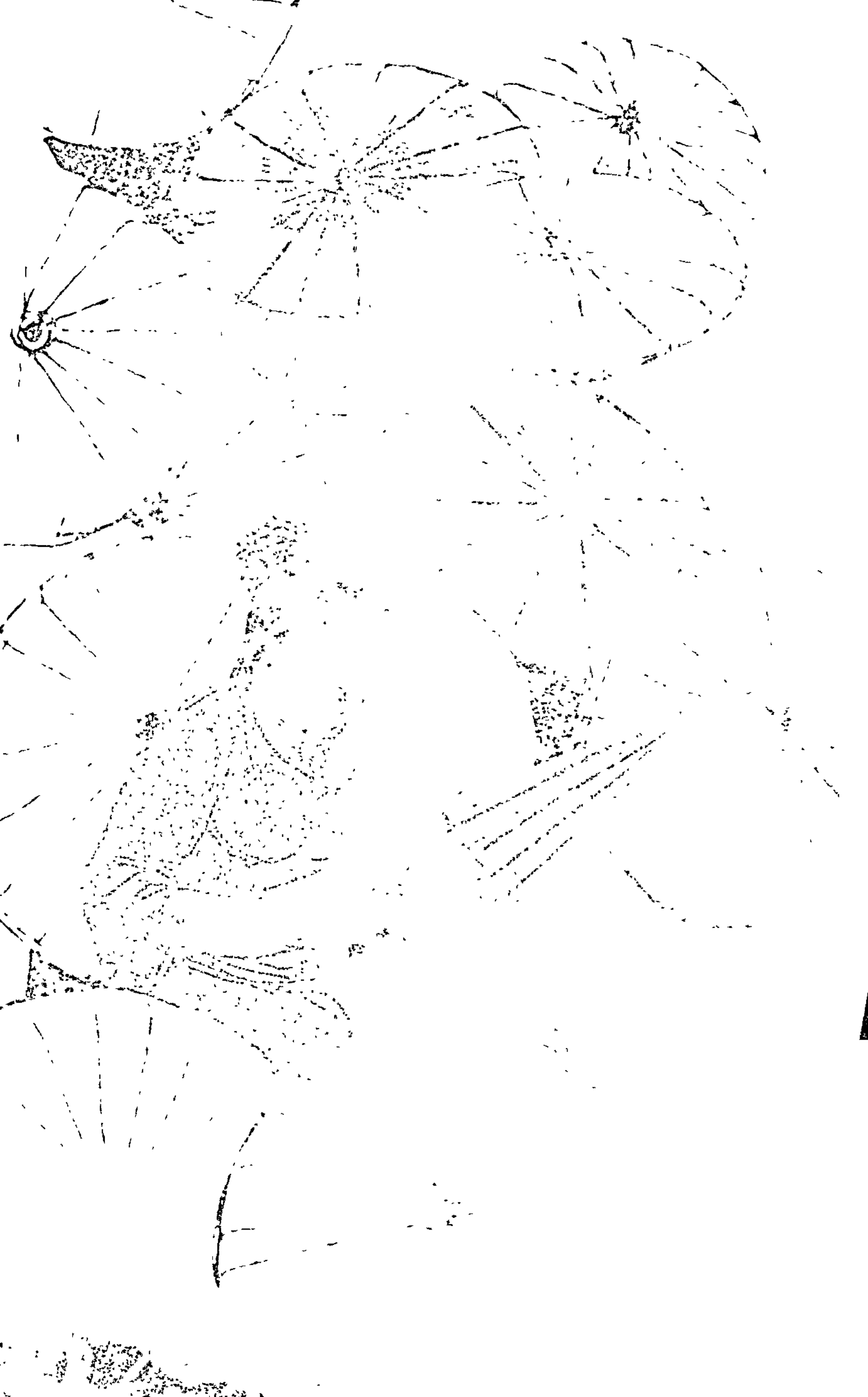

सहयोग मिला, इसलिए वे धार्मिक रूप में सामने आईं। बड़े-बड़े मठ और पगोडे बने, बुद्ध की मूर्तियां बनीं, बुद्ध का जीवन-चरित्र नाटकों के रूप में मुखरित हुआ और मन्दिरों की दीवालों पर चित्र-कला पनपी। पगोडों के बर्तनों तथा सजावट की चीजों पर तरह-तरह के दृश्य अंकित किए गए। देश के विभिन्न पगोडों में कला बिखरी पड़ी है।

पागान-काल में बर्मी संगीतकला अपने चरम उत्कर्ष पर थी। पगोडों में प्रतिदिन संगीत होता था। सभी त्योहारों पर गांव के गांव सामूहिक रूप से संगीत में भाग लेते थे।

बर्मी संगीत कम से कम 1500 वर्ष पुराना है। 802 ईसवी में चीनी यात्रियों ने बर्मी वाद्य-संगीत की प्रशंसा की थी। परम्परागत बर्मी 'सेंग वेंग' (ढोलों का चक्कर) और 'की वेंग' (घंटों का चक्कर) तथा 'सोंग' (एक प्रकार का तम्बूरा) मिलकर मधुर तान देते हैं। बांस के कई तरह के वाद्य यन्त्र भी मशहूर हैं।

बर्मी नृत्य दो प्रकार का है—शुद्ध नृत्य और नृत्य नाटिका। नृत्य नाटिका अधिक लोकप्रिय शैली है और इसमें भगवान बुद्ध के जीवन की विभिन्न कहानियों को नृत्य के द्वारा दिखाया जाता है।

'नाटखी' एक किस्म का नाटक है जिसमें भागवान बुद्ध की कहानी के साथ-साथ आधुनिक नाटिका चलती है और मुख्य रूप से किसी व्यवस्था का मजाक बनाया जाता है। कभी-कभी 'नाटखी' सारी रात खेले जाते हैं। 'ईएनखी' भी नृत्य नाटिका का एक रूप है और इसमें सामूहिक नृत्य की प्रधानता है। 'योजथेखी' में पुरुष जानवरों के रूप में नृत्य करते हैं।

बांस की रंग-बिरंगी छतरियां—
बर्मा के घरेलू शिल्प का नमूना

पूर्व एशिया के देशों को यहां से कांसे के घंटे बड़ी संख्या में निर्यात किए जाते हैं।

बांस के छाते और उनपर रंगीन कपड़ों के चंदोवे वर्मा जाने वाला प्रत्येक व्यक्ति खरीदता है। खेतों में रंगीन छाते लिए वर्षा में काम कर रहे नर-नारियां देखते ही बनते हैं।

वर्मा में बांस और लकड़ी के खिलौने हर जगह बनते हैं। लकड़ी की गुड़ियों पर लाख की रंगाई प्रसिद्ध है। लकड़ी और बांस का फर्नीचर हर घर में भिन्न ढंग का दिखाई पड़ता है। कहते हैं कि बांस का फर्नीचर बनाने वाले एक ढंग की चीज़ दुबारा नहीं बनाते, कुछ न कुछ परिवर्तन ज़रूर कर देते हैं।

मूर्तिकला

मूर्तिकला के अच्छे नमूने पगोडों में दिखाई पड़ते हैं। इन पर भारत का प्रभाव स्पष्ट है। भगवान बुद्ध की विशाल प्रतिमाएं भारतीय ढंग की अधिक हैं और चीनी ढंग की कम।

वर्मी शेर की मूर्तियां सभी महलों के आगे दिखाई देती हैं। ग्रामों में प्रमुख पर्वों पर कुम्हार मिट्टी की मूर्तियां बनाते हैं और इनमें बुद्ध की मूर्तियां ही अधिक होती हैं।

आधुनिक मूर्तिकला पर पश्चिम का प्रभाव अधिक है। आधुनिक चित्रकला भी पश्चिम से प्रभावित है। प्रचीन चित्रकला पगोडों की दीवालों पर अंकित हैं। इनमें भगवान बुद्ध के जीवन की झांकियां ही सबसे ज्यादा हैं।

वर्मा में सूत कातना और रंग-विरंगे कपड़े बुनना परम्परा से होता आया है। पुरुषों की वंडियां और तम्बा अनेक रंगों में बुने जाते हैं। महिलाओं के रंगीन कपड़े तो देखते ही बनते हैं। गांवों में घर-घर में सूती कपड़े और कालीन बुनना जीवन का एक मुख्य अंग है।

सोना, चांदी और लकड़ी पर खुदाई का काम विश्व-विख्यात है। बहुमूल्य पत्थरों पर पच्चीकारी का काम तो सैकड़ों वर्ष से वर्मा के शिल्पकारों का मुख्य धन्धा रहा है। लकड़ी पर सजावट का काम भी सारे विश्व में विकता है।

लाख के वर्तन, ट्रे, सिगरेटकेस आदि अत्यन्त सुन्दर बनाए जाते हैं। इन पर चांदी और सोने से डिज़ाइन वनाए जाते हैं। रेशम पर ज़री का काम भी विख्यात है।

कांसे के घंटे ढालने का उद्योग अत्यन्त प्राचीन है। माण्डले के पास मिगुन पगोडा में 12 फुट ऊंचा और 10 फुट चौड़ा घंटा 100 टन वज़न का है। यह शायद दुनिया का सबसे बड़ा घंटा है। दक्षिण-

10

प्रशासन और अर्थ-व्यवस्था

वर्मा के प्रधान सेनापति जनरल ने विन ने 2 मार्च, 1962 को प्रधान मन्त्री ऊ नू की सरकार तथा संसदीय जनतन्त्री प्रणाली को उखाड़कर राष्ट्रीय क्रान्तिकारी परिषद् का सैनिक शासन स्थापित किया था। यही प्रशासन आज तक वर्मा में चल रहा है। इस प्रशासन को जनरल ने विन ने वर्मा का अपना समाजवादी प्रशासन कहा है। सैनिक सरकार ने अपना लक्ष्य 'देश के मजदूरों और किसानों का सामाजिक और आर्थिक कल्याण करना' बनाया है।

जनरल ने विन राष्ट्राध्यक्ष तथा सरकार के प्रधान भी हैं। उनकी अध्यक्षता में एक मन्त्री-परिषद् है जिसके अधिकांश सदस्य सैनिक अधिकारी हैं। प्रशासन का ढांचा लगभग वैसा ही है जैसा अंग्रेज़ों ने 1948 में आज़ादी देते समय सौंपा था। सारा देश जातियों के आधार पर क्षेत्रों में बंटा है तथा हर क्षेत्र में ज़िले हैं। ज़िला-प्रशासन भारत की भांति सिविल सर्विस के अधिकारियों के मातहत है। न्याय व्यवस्था देश के कानून पर आधारित है। नौकरशाही भारत की भांति मजबूत है।

राष्ट्राध्यक्ष जनरल ने विन का जन्म 24 मई, 1911 को प्रोम नगर के नज़दीक एक गांव में हुआ था। उन्होंने सन् 1930 में हुए राष्ट्रीय थकिन आन्दोलन के समय रंगून विश्वविद्यालय छोड़ा था।

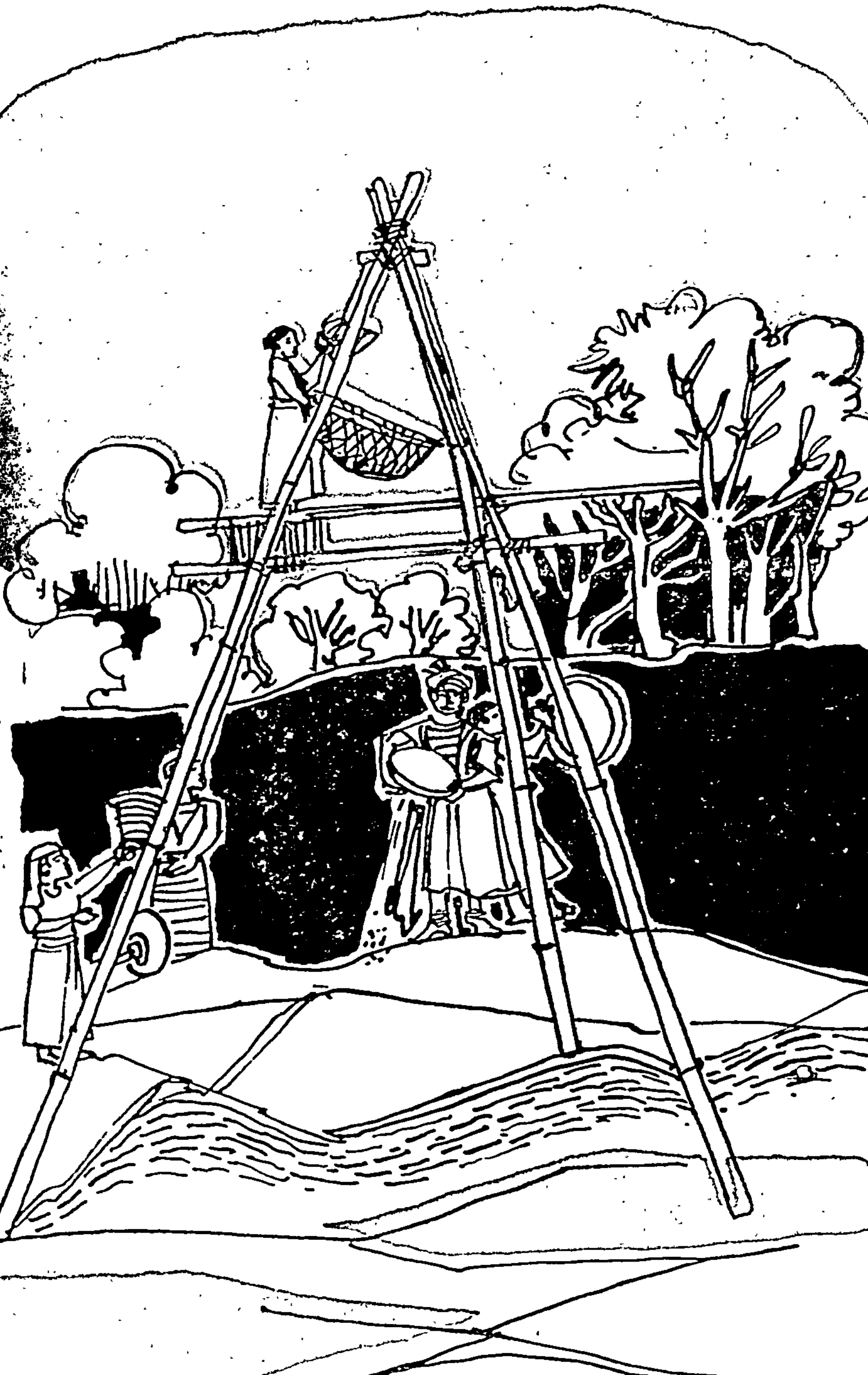

किस हद तक राष्ट्रीयकरण किया गया है, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि सब्ज़ी की दुकानों का भी राष्ट्रीयकरण हो चुका है। अखबारों तक पर सरकार का अधिकार है।

जनरल ने विन की अध्यक्षता में 'क्रान्तिकारी परिषद्' ने अपनी नीति-घोषणा में कहा है :

"बर्मा में संसदीय जनतन्त्र असफल हो चुका है और इस व्यवस्था के अन्तर्गत बर्मा का समाजवादी विकास नहीं हो सका। हमें ऐसा जनतन्त्र कायम करना है जो समाजवादी विकास कर सके।"

कृषि और जंगल

बर्मा कृषि-प्रधान देश है। 80 प्रतिशत लोग खेती का काम करते हैं और 75 प्रतिशत निर्यात खेती की उपज का है।

बर्मा में सवा दो करोड़ एकड़ भूमि में खेती होती है और आधे से अधिक खेती चावल की है। लोगों का मुख्य भोजन चावल है और चावल के अलावा मूंगफली, दालें, ज्वार-बाजरा, पटसन, कपास और मक्का की खेती होती है।

द्वितीय विश्व-युद्ध से पूर्व विश्व में सबसे अधिक चावल का निर्यात बर्मा से होता था लेकिन अब चावल के उत्पादन में बर्मा का चौथा स्थान है। उत्पादन कम होने का मुख्य कारण है बार-बार उभरते विद्रोह और ज़मीन में खाद-पानी का समुचित रूप से प्रयोग न होना।

अब क्रान्तिकारी सरकार ने कृषि संबंधी उत्पादन में वृद्धि को प्राथमिकता दी है। सिंचाई की योजनाएं चलाई हैं तथा रासायनिक खाद का उपयोग बढ़ाया है। ज़मींदारियां खत्म करके किसान को

खेतों में धान की सफाई

जमीन का मालिक बनाया गया है तथा सहकारी समितियों की मार्फत किसानों को बड़ी मात्रा में कर्ज़ देने की व्यवस्था की गई है। युद्ध के दिनों में जिन खेतों को छोड़ दिया गया था और जो बंजर हो गए थे, उन्हें पुनः खेती योग्य बनाकर किसानों को बांटा गया है। प्रत्येक किसान को दस एकड़ भूमि दी गई है।

ऐसे आदर्श गांव स्थापित किए गए हैं जहां सहकारी खेती है, स्कूल तथा अस्पताल हैं और खेती की आधुनिक मशीनें हैं।

देश के पूरे क्षेत्रफल में 57 प्रतिशत भूमि पर जंगल है जहां से विश्व की 76 प्रतिशत इमारती लकड़ी मिलती है। बर्मा की इमारती लकड़ी सारे विश्व में प्रसिद्ध है और सैकड़ों वर्षों से इसका निर्यात होता रहा है। लकड़ी उद्योग का राष्ट्रीयकरण 1949 में कर दिया गया था। राष्ट्रीय लकड़ी बोर्ड के हाथ में सारा निर्यात व्यापार है। [illegible]ड़ी उद्यो[illegible] में लगभग एक लाख लोग लगे हैं तथा चार हज़ार हाथी [illegible]ड़ी को ढोने का काम करते हैं।

परिवहन और संचार व्यवस्था

बर्मा में साढ़े तेरह हज़ार मील लम्बी पक्की सड़कें, पांच हज़ार मील लम्बी कच्ची सड़कें तथा आठ हज़ार लम्बी पगडंडियां हैं, देश में सड़कों का विस्तार देर से होने का कारण यह है कि प्राचीन समय से उत्तर से दक्षिण को बहने वाली नदियां यातायात का काम देती रही हैं। सारी परिवहन व्यवस्था का राष्ट्रीयकरण हो चुका है।

देश में केवल दो राजमार्ग सबसे अच्छे हैं—एक तो रंगून से माण्डले की साढ़े चार सौ मील की सड़क तथा दूसरी रंगून से प्रोम

बर्मा में चार हज़ार हाथी लकड़ी
ढोने का काम करते हैं

कुएं थे।

सरकार ने 1963 में तेल उद्योग का राष्ट्रीयकरण करके औद्योगिक विकास की ओर कदम रखा। वर्मा की खाड़ी में तेल का भण्डार है, इसलिए उसी क्षेत्र में चौक नामक स्थान पर तेल साफ करने का वड़ा कारखाना खोला गया है। रंगून के पास का तेलशोधक कारखाना द्वितीय विश्व-युद्ध में ध्वस्त हो गया था, उसे भी फिर से वनाया गया और उसका विस्तार किया गया।

आजकल खनिज तेल का उत्पादन 20 करोड़ गैलन से अधिक है और वर्मा तेल के मामले में आत्मनिर्भर है।

वर्मा में चाँदी, सीसा, सोना, टीन, ताँबा, चूना तथा बहुमूल्य पत्थरों की खानें वड़ी संख्या में हैं।

रंगून के पास नये उद्योग खोले गए हैं। इनमें कपड़ा मिल, इस्पात का कारखाना, जूट मिल तथा दवाइयों का कारखाना मुख्य हैं। चीनी के दो वड़े कारखानों की स्थापना से वर्मा चीनी के मामले में आत्मनिर्भर हो गया।

नदियों, झीलों और समुद्र में मछली पकड़ने का उद्योग बढ़ता जा रहा है। इससे मछली खाना लोकप्रिय होता जा रहा है।

होती हुई मिग्यान तक की सड़क। प्रसिद्ध वर्मा रोड माण्डले से कुनमिग तक जाती है।

भारत और वर्मा को मिलाने वाली दो सड़कें भी अच्छी हैं— एक भारत में इम्फाल से वर्मा में कलेवा तक तथा दूसरी लेडो से मितघीना तक। ये सड़कें वर्षा ऋतु के चार महीनों को छोड़कर शेष महीनों में मोटरों के काम आती हैं।

वर्मा में ढाई हज़ार मील लम्वी रेलवे लाइन है। रंगून से माण्डले तक की रेल सड़क के किनारे-किनारे चलती है। रेलें उत्तर वर्मा में कम और दक्षिण में ज़्यादा हैं। पहाड़ी और जंगली क्षेत्र तथा वर्षा अधिक होने के कारण रेलें वनाना महंगा है तथा उनका उपयोग कम।

इरावदी, चिंडविन, सालवीन, दसितांग आदि वड़ी नदियों में जहाज़-सेवा काफी विस्तृत है। समुद्र-तट से वर्मा की उत्तरी सीमा तक इरावदी नदी में जहाज तथा नावें चलती हैं। सात सौ जहाज़, ढाई सौ मशीनी नावें तथा चार सौ वड़ी नावें चलती हैं। 1969 में 50 लाख से अधिक लोगों ने जहाजों से यात्रा की तथा 15 करोड़ टन माल इन जहाजों ने ढोया। वर्मा में 31 हवाई अड्डे हैं। वड़े नगरों के वीच दैनिक हवाई सेवाएं तथा छोटे नगरों के लिए सप्ताह में दो या तीन सेवाएं हैं। 1969 में 2 लाख से अधिक व्यक्तियों ने वायुयानों से सफर किया। अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा रंगून में है।

वर्मा के सभी वड़े नगरों में टेलीफोन व्यवस्था है और देश में एक हज़ार से अधिक डाकघर हैं।

उद्योग

जव 1948 में वर्मा को आज़ादी मिली तव उद्योगों के नाम पर देश में धान कूटने तथा लकड़ी चीरने की मिलें थीं और कुछ तेल के

स्थान नहीं। परम्परा से मालदार और गरीब दोनों के बच्चे इन विहारों में एक साथ एक स्तर की शिक्षा पाते हैं। ऊंच-नीच की भावना पैदा न होने देने की दिशा में इन विहारों का योगदान काफी है।

अंग्रेज़ों ने सरकारी प्राथमिक स्कूल खोले थे जिनमें लड़के और लड़कियों की शिक्षा की एकसाथ व्यवस्था थी। ऐसे प्राथमिक स्कूल अब प्रत्येक बड़े गांव में हैं। इनकी संख्या 14 हज़ार है और छात्र-छात्राओं की संख्या 16 लाख से ज़्यादा है। इन सभी प्राथमिक स्कूल में धर्मनिरपेक्ष शिक्षा की व्यवस्था है। पाठ्य पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण किया जा चुका है और सभी पाठ्य पुस्तकों को सारे देश में एक-सा बनाया गया है। पाठ्य पुस्तकें नये वैज्ञानिक तरीके की हैं और सरकार उन्हें प्रकाशित करके प्रत्येक प्राथमिक कक्षा के बालक-बालिका को निःशुल्क देती है।

सभी प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अनिवार्य रूप से बर्मी भाषा का बनाया गया है। केवल कुछ कायाह, करेन तथा शान इलाकों में स्थानीय भाषाएं चौथी कक्षा तक पढ़ाई जाती हैं। पांचवीं से प्रत्येक छात्र-छात्रा को बर्मी सीखनी होती है। अंग्रेज़ी माध्यम के सभी प्राथमिक स्कूल बर्मी में परिवर्तित किए जा चुके हैं। अब कोई व्यक्ति बर्मा में प्राइवेट स्कूल नहीं खोल सकता।

सन् 1965 से अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का दौर शुरू किया गया। सरकारी अनुमान के अनुसार 1975 तक बर्मा में कोई व्यक्ति अशिक्षित नहीं रह जाएगा।

माध्यमिक स्कूल पांचवीं से सातवीं कक्षा तक होते हैं। सभी माध्यमिक स्कूल सरकारी हैं और उनमें उद्योग-धन्धों की शिक्षा पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है। पांचवीं कक्षा से प्रत्येक छात्र को अंग्रेज़ी

11
शिक्षा और खेल-कूद

भारत के विपरीत वर्मा में अशिक्षितों की संख्या बहुत कम है। राष्ट्र-संघीय अनुमान के अनुसार 70 प्रतिशत वर्मी लोग शिक्षित हैं और जो 30 प्रतिशत अशिक्षित हैं, उनमें अधिकांश सुदूर पहाड़ी में बसे हुए हैं तथा आधुनिक सभ्यता से दूर हैं।

वर्मा में शिक्षा के इतने विस्तार का कारण अंग्रेजी राज नहीं, अंग्रेजी राज से पहले चली आ रही बौद्ध विहारों की व्यवस्था है। प्रत्येक गांव में आवश्यक रूप से एक विहार होता है, जिसे फ्योंगी क्योंग कहते हैं। प्रत्येक बालक 6 या 7 वर्ष की आयु में इन विहारों में दीक्षा लेता है, जहां आरंभिक शिक्षा और धर्म की शिक्षा दी जाती है। यह शिक्षा पहले अव्यवस्थित थी और केवल धार्मिक पुस्तकों को पढ़ना ही सिखाया जाता था, लेकिन अब इन बौद्ध-विहारों की पाठ-शालाओं को प्राथमिक स्कूल का दर्जा दे दिया गया है। इन विहारों के भिक्षुओं को नार्मल ट्रेनिंग देकर प्राथमिक शिक्षा के स्तर का बनाया गया है। पाठ्य पुस्तकें इन विहारों में वे ही हैं जो अन्य सरकारी प्राथमिक स्कूलों में हैं।

देश में इस समय लगभग 6 हजार ऐसे प्राथमिक स्कूल हैं जो ग्रामों के बौद्ध-विहारों में चल रहे हैं। लेकिन इनमें लड़कियों की शिक्षा की व्यवस्था नहीं है, क्योंकि बौद्ध विहारों में लड़कियों का कोई

अनिवार्य रूप से पढ़नी होती है। कुछ नगरों के स्कूलों में अंग्रेजी के स्थान पर अन्य यूरोपीय भाषाओं की शिक्षा की व्यवस्था की गई है।

एक ओर जहां हाई स्कूलों में विज्ञान की शिक्षा पर जोर है तो दूसरी ओर माध्यमिक स्कूलों से निकलने वाले छात्रों को औद्योगिक स्कूलों में भेजने पर जोर दिया जा रहा है। पॉलीटेकनिक स्कूल भी बहुत संख्या में खोले जा रहे हैं। लक्ष्य यह है कि नये शिक्षित लोग ऐसे न हों जो दफ्तरों में क्लर्क बनने का यत्न करें।

ग्रामीण क्षेत्रों में माध्यमिक तथा हाई स्कूल कृषि की शिक्षा पर जोर देते हैं। सरकार का लक्ष्य यह है कि नये माध्यमिक तथा हाई स्कूल केवल कृषि की शिक्षा के लिए ही खोले जाए, भाषाओं के अध्ययन के लिए नहीं।

बर्मा में उच्च शिक्षा के दो बड़े केन्द्र रंगून और माण्डले में हैं। इन्हीं दो स्थानों पर विश्वविद्यालय हैं। अंग्रेजों के दिनों में दोनों विश्वविद्यालयों में कला-सम्बन्धी विषय ही प्रमुख थे। लेकिन अब माण्डले विश्वविद्यालय को कृषि-शिक्षा का मुख्य केन्द्र तथा रंगून विश्वविद्यालय को विज्ञान और तकनीकी शिक्षा का मुख्य केन्द्र बनाया गया है। तकनीकी तथा इंजीनियरी विद्यालयों को स्वायत्तशासी संस्थानों में परिवर्तित किया गया है।

शिक्षा व्यवस्था में विज्ञान, तकनीक, कृषि और ललित कलाओं पर जोर देने का परिणाम यह हुआ है कि अब देश में शिक्षित बेकारों की संख्या तेजी से घटती जा रही है। प्रत्येक छात्र को विश्वविद्यालय में बी० ए० और एम० ए० की डिग्री लेने की सुविधा नहीं, केवल मेधावी छात्रों को ही विश्वविद्यालयों में लिया जाता है और बाद मे उनकी प्रतिभा बेकार नहीं जाती, देश उसका उपयोग करता है।

विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र माण्डले में हर साल आयोजित हाथी-दौड़ है। इसमें कई सौ हाथी एकसाथ भाग लेते हैं। इस दौड़ में विजयी हाथी के मालिक को वर्ष का गज-मोती पदक प्रदान किया जाता है। इस तरह की हाथी-दौड़ विश्व में और कहीं नहीं देखी जाती।

पहाड़ी क्षेत्रों में मुर्ग तथा तीतर लड़ाने की प्रथा है। विशेष पर्वो पर लगने वाले मेलों में मुर्ग तथा तीतर लड़ाने की प्रतियोगिताएं होती हैं।

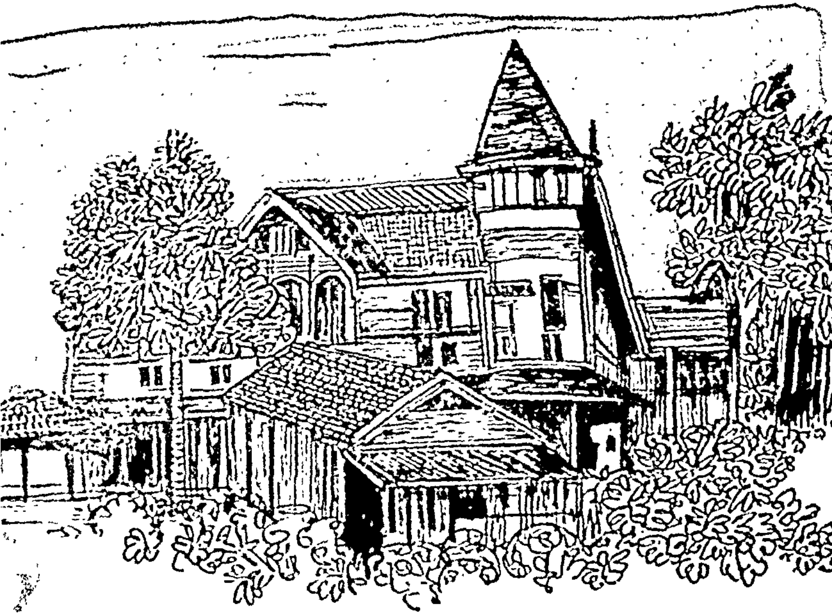

आंग सान संग्रहालय

बैडमिंटन में बर्मा का तीसरा स्थान था।

बर्मा में फुटबाल का खेल ज़्यादा प्रचलित है। वर्षा ज़्यादा होने के कारण हाकी का खेल उतना लोकप्रिय नहीं जितना कि भारत में है।

बर्मा का सबसे बड़ा स्टेडियम रंगून का आंग सान स्टेडियम है। इसी स्टेडियम में 1961 में एशियाई खेल-कूद प्रतियोगिता आयोजित की गई थी। माण्डले तथा कुछ अन्य नगरों में छोटे स्टेडियम बनाए गए हैं।

12

स्वास्थ्य और समाज-कल्याण

1948 में आज़ादी प्राप्त करते समय वर्मा के नगरों में ही चिकित्सा की सुविधाएं थीं और देश के 80 प्रतिशत लोगों को या तो विना इलाज के जीवित रहना होता था या नकली चिकित्सकों की शरण लेनी होती थी। लेकिन क्रान्तिकारी सरकार ने शासन संभालते ही एक आदेश से सभी नकली चिकित्सकों को समाप्त कर दिया। जिस व्यक्ति के पास सरकारी डिप्लोमा नहीं, वह वर्मा में चिकित्सक नहीं हो सकता। अगर नकली चिकित्सक पकड़ा जाता है तो उसे आजीवन कारावास की सज़ा दी जाती है।

ग्रामों में चिकित्सकों को ले जाने में वर्मा के सामने भी वही कठिनाई थी जो भारत के सामने अब तक है। वर्मा में प्रत्येक मेडिकल कालेज से निकलने वाले छात्रों के लिए यह अनिवार्य किया गया कि वे दो वर्ष तक ग्रामों के सरकारी अस्पताल या चिकित्सा-केन्द्र पर कार्य करें। इसीके वाद किसी डाक्टर को प्राइवेट प्रैक्टिस की इजाज़त दी जाती है।

ग्रामों में डाक्टरों को ले जाने के लिए दूसरा कदम यह उठाया गया कि शहरी अस्पतालों में काम करने वाले डाक्टरों को दूना वेतन देकर ग्रामों में भेजा जाता है। फिर प्रत्येक सरकारी डाक्टर को कम से कम दो वर्ष तक अनिवार्य रूप से ग्रामों में काम करना होता है।

हैज़ा फेला था और अनुमान है कि कई हज़ार व्यक्ति मर गए थे।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अध्ययन के अनुसार समस्त दक्षिण-पूर्व एशिया में कोढ़ रोग से पीड़ितों की संख्या बर्मा में सबसे अधिक है और कोढ़ का प्रकोप मुख्य रूप से मध्य बर्मा में है इसमें भी ग्रामीण क्षेत्रों में कोढ़ियों की संख्या ज़्यादा है।

समाज-कल्याण

बर्मा में वेश्यावृत्ति पहले से ही कम रही है और देश के इतिहास में कभी भी वेश्याओं को लाइसेंस देने की व्यवस्था नहीं रही। वेश्या-वृत्ति का ज़्यादा प्रचलन न होने का कारण मुख्य रूप से यह रहा है कि स्त्रियों को कभी पुरुष से छोटा दर्जा नहीं दिया गया और न उन्हें घरों में बन्द रखकर पर्दा प्रथा में बांधा गया। महिलाएं शुरू से ही सभी तरह के काम करती हैं और अपनी इच्छा से पति का चुनाव करती हैं। फिर विधवा होने पर उन्हें शुरू से ही पुनर्विवाह की छूट रही है। कबाइली इलाके में तो महिलाएं परिवार की सारी सम्पत्ति की मालिक तक होती रही हैं।

फिर भी विदेशी मुसलमानों आदि के प्रभाव से शहरों में, विशेष कर अंग्रेज़ी शासन-काल में, वेश्याएं देखी जाती थीं। सरकार ने वेश्यावृत्ति पर पाबन्दी लगाकर सभी को सुधार-केन्द्रों में भेजकर काम-धन्धों की शिक्षा दी जिससे वे अपनी रोज़ी कमा सकें और उन्हें इस बुरे काम में न फंसना पड़े। कल्याण के इस क्षेत्र में बर्मा ने सफ-लता पाई है।

बर्मा में 30 अनाथालय हैं और सभी का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। अब कोई व्यक्ति निजी अनाथालय खोलकर अनाथ बच्चों का उपयोग अपनी सम्पत्ति बढ़ाने के लिए नहीं कर सकता।

सरकार की घोषित नीति यह है कि देश के प्रत्येक नागरिक को निःशुल्क चिकित्सा की सुविधा हो, लेकिन अभी देश इस लक्ष्य से काफी दूर है। इस समय देश में 300 अस्पताल तथा दो हज़ार स्वास्थ्य केन्द्र हैं। डाक्टरों की संख्या 2,000 है। विदेशियों द्वारा चलाए गए सभी अस्पतालों का 1965 में राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था। निजी अस्पताल भी सरकार के हाथ में आ गए हैं। सरकार का लक्ष्य यह है कि जल्दी ही प्राइवेट डाक्टर भी खत्म कर दिए जाएं।

देशी चिकित्सा हमारी आयुर्वेदिक चिकित्सा से मिलती-जुलती है। उसमें तिब्बती, चीनी तथा थाई पद्धतियों का मेल है। आयुर्वेद भारत से जाने वाले अपने साथ ले गए थे और बाद में उसमें स्थानीय आदिवासियों की दवाओं का भी समावेश हुआ। बर्मी सरकार ने देशी चिकित्सा पद्धति को आधुनिक रूप देने का यत्न किया है तथा सभी अच्छी देशी दवाइयों की वैज्ञानिक रूप से जांच करके उन्हें नई पद्धति में शामिल करने का यत्न किया है। देशी पद्धति के 8 मेडिकल कालेज खोले गए हैं—रंगून, माण्डले, सांगेगा, मागवे, मौलमीन, बेसीन, मरगुई और अक्याब में।

बर्मा के जंगलों और पहाड़ों पर तरह-तरह की जड़ी-बूटियां पैदा होती हैं। इन जड़ी-बूटियों की खोज तथा उनकी उपयोगिता की जांच के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन के सहयोग से एक बड़ा अभियान चलाया गया है।

बर्मा में चेचक, मलेरिया, तपेदिक, आंखों की बीमारियां तथा कोढ़ का प्रकोप मुख्य रूप से होता है। इन सभी बीमारियों के खिलाफ अभियान चलाए जा रहे हैं। वर्षा ऋतु की सबसे भयंकर बीमारी हैज़े का उन्मूलन किया जा चुका है। 1963 में देश में भयंकर

सरकारी कानून के अनुसार प्रत्येक अनाथ बालक-बालिका की देख-रेख राज्य की ज़िम्मेदारी है। अनाथ बच्चों को शिक्षा देकर सरकार अपने कामों में लगा लेती है।

आदतन बिगड़े बच्चों के लिए कई ऐसे केन्द्र खोले गए हैं जहां उन्हें उपयोगी काम सिखाए जाते हैं जिससे वे सामाजिक विकास में हिस्सा ले सकें और चोरी, डाका और अन्य अपराधों को बढ़ावा न दे सकें। युवक अपराधियों के लिए अलग से अदालतें स्थापित की गई हैं जहां जेलों की सज़ा देने की जगह उनकी शिक्षा पर ध्यान दिया जाता है।

अंध विद्यालय का राष्ट्रीयकरण किया गया है और अंधे बालक-बालिकाओं को 10 वर्ष की आयु तक शिक्षा दी जाती है। बाद में उनको काम देने की ज़िम्मेदारी राज्य की है।

वृद्ध लोगों की ज़िम्मेदारी राज्य ने अपने हाथ में ली है। प्रत्येक वृद्ध को पेंशन दी जाती है और अपाहिज होने पर वृद्ध-गृहों में रखा जाता है।

देश की जेलों को सुधार-गृहों में परिवर्तित किया गया है। सज़ा देने पर उतना ज़ोर नहीं जितना कि अपराध की प्रवृत्ति रोकने पर है। प्रत्येक अपराधी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है और फिर सुधार के तरीके बताए जाते हैं। बर्मा में 8 केन्द्रीय जेलें तथा 22 जिला जेलें हैं। बर्मा की मुख्य अदालत रंगून में है। और यह हमारे सर्वोच्च न्यायालय की भांति है। अंग्रेजों के दिनों में एक हाईकोर्ट था और एक सर्वोच्च न्यायालय। इन दोनों को मिलाकर ही मुख्य अदालत का निर्माण किया गया है। इसमें 6 न्यायाधीश

पेगू का सुप्रसिद्ध पगोडा

13
तीन बड़े नेता

संयुक्त राष्ट्र संघ के भूतपूर्व महासचिव ऊ थांट, वर्मा के नेहरू ऊ नू और वर्मा के वर्तमान राष्ट्राध्यक्ष जनरल ने विन विश्व-विख्यात वर्मी नेता हैं। तीनों नेता पक्के बौद्ध हैं और समय-समय पर भारत के बौद्ध तीर्थों की यात्रा करते रहते हैं, इसलिए भारतीय जनता उनसे भली प्रकार परिचित है।

ऊ थांट

साठ वर्ष के ऊ थांट अनेक वर्षों तक संयुक्त राष्ट्र संघ के महा-सचिव रहे और इस विश्व संस्था का काम उन्होंने इस ढंग से चलाया कि सारे देशों का इस संस्था में विश्वास बढ़ा। ऊ थांट सरल स्वभाव के और मृदुभाषी हैं और उनकी नीति यह थी कि कभी कोई उनका दुश्मन नहीं हो सका। वियतनाम और पश्चिम एशिया की लड़ाई से विश्व-युद्ध का खतरा कई बार पैदा हुआ लेकिन ऊ थांट ने उसे सहज रूप में टाला। उन्होंने सदा सभी विश्व-समस्याओं को शान्तिपूर्ण बातचीत से हल करने पर जोर दिया तथा इसके लिए हमेशा पहल की। उनके एक साथी ने कहा है—"ऊ थांट को किसी भी कठिन परिस्थिति में कभी परेशान नहीं देखा। वे सभी स्थितियों में शान्त रहते हैं और सोच-समझकर बीच का रास्ता निकालने का

होते हैं। मुख्य अदालत की शाखा माण्डले में है और वहां बारी-बारी से मुख्य अदालत के 6 न्यायाधीशों में से एक बैठता है। यह इसलिए कि ऊपरी बर्मा के मामलों का जल्दी फैसला हो सके।

राजनीतिक बन्दियों के लिए सैनिक सरकार ने सैनिक अदालतें स्थापित की हैं। उनके निर्णयों की अपील मुख्य अदालत में नहीं की जा सकती। राजनीतिक बन्दियों को अलग शिविरों में रखा जाता है जिससे उन्हें अपराधियों से अलग रखा जा सके।

गत वर्ष बर्मा की समस्त जेलों मे लगभग 7 हज़ार सज़ायाफ्ता अपराधी तथा 6 हज़ार ऐसे लोग थे जिनपर मुकद्दमे चल रहे थे। राजनीतिक बन्दियों की संख्या 500 थी।

सिक्का

बर्मा को आज़ादी मिलने के समय 1948 तक बर्मा का सिक्का भारतीय रुपया ही होता था। आज़ादी के बाद उसका नाम बदलकर क्याट कर दिया गया। 1 क्याट की कीमत डेढ़ रुपये के बराबर होती है। एक क्याट में 100 प्यास होते हैं। कागज़ी नोट एक, पांच, दस, सौ और 1 हज़ार क्याट के होते हैं। सिक्के एक, पांच दस और पचास प्यास के होते हैं।

बर्मी सिक्के देश के बाहर नहीं चलते, जैसे कि भारत का रुपया अब देश के बाहर नहीं चलता। सभी विदेशी व्यापार पौण्ड या डालर में होता है।

जनरल ने विन ने दो साल में शान्ति कायम करके 1960 में सत्ता पुनः निर्वाचित नेता ऊ नू को सौंप दी। लेकिन इन दो वर्षों ने सेना को सत्ता का लालची बना दिया था, इसलिए 1962 में जनरल ने विन ने निर्वाचित ऊ नू की सरकार को ज़बरन उखाड़ दिया और तब से अब तक बर्मा में जनरल ने विन का सैनिक शासन है।

जनरल ने विन और ऊ नू दोनों अच्छे मित्र थे और दोनों ने ही स्वतन्त्रता संग्राम में आंग सान का साथ दिया था। ऊ नू ने जनरल ने विन को अपनी सरकार में रक्षा मन्त्री भी बनाया था। लेकिन बाद में दोनों नेताओं में ऐसी खटकी कि जनरल ने विन ने ऊ नू को गिरफ्तार कर लिया और पांच वर्ष तक जेल में रखकर 1967 में रिहा किया। तब से ऊ नू विदेशों में रहकर बर्मा में जनतन्त्री शासन की स्थापना के लिए आन्दोलन कर रहे हैं। कितने दुख की बात है कि जिस नेता ने देश को आज़ादी दिलाई वही आज देश से बाहर की खाक छान रहा है और एक बार फिर से देश में जनता का शासन कायम कराने के लिए आन्दोलन कर रहा है।

सन् 1960 के आम चुनाव में ऊ नू ने घोषणा की थी कि वे पांच वर्ष तक शासन चलाने के बाद राजनीति से संन्यास ले लेंगे और फिर बौद्ध धर्म का प्रचार करेंगे। लेकिन दो साल में ही जनरल ने विन ने उन्हें राजनीति से हटाकर जेल में डाल दिया और उसी जेल में रखा जिसमें वे अंग्रेज़ी शासन के खिलाफ आन्दोलन में गिरफ्तार करके रखे गए थे।

ऊ नू छात्र आन्दोलन से राजनीति में आए थे। उन्होंने बर्मी वेशभूषा और बर्मी भाषा के प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठाया था। उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के लिए अनेक नाटक लिखे थे जो राष्ट्रीय आन्दोलन में जगह-जगह खेले जाते थे। 'जनता की जीत' और 'पाप

की आय' उनके दो ऐसे नाटक हैं जो बर्मा में काफी लोकप्रिय रहे। पहले नाटक में ब्रिटिश तानाशाही तथा दूसरे में भ्रष्टाचारी अफसरों की पोल खोली गई है।

ऊ नू ने बौद्ध धर्म की भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। सरल बर्मी भाषा में प्राथमिक धर्म-शिक्षा पर लिखी उनकी पुस्तक आज भी बर्मा के प्राथमिक स्कूलों में पढ़ाई जाती है।

जनरल ने विन

जनरल ने विन ने छात्र-जीवन में ही राष्ट्रीय आन्दोलन में हिस्सा लेना शुरू किया था और वे आंग सान के साथ द्वितीय विश्व-युद्ध के दिनों में जापान चले गए थे। वहां उन्होंने जापानी विशेषज्ञों से सैन्य कला सीखी। 1948 में वे आंग सान के साथ जापानी सेना के पीछे बर्मा आए। आंग सान ने देश की आज़ादी के लिए सेना खड़ी की। आंग सान सेनाध्यक्ष तथा ने विन उप-सेनाध्यक्ष बने।

अंग्रेज़ों ने जापान के लौटने पर पुनः बर्मा में अपना शासन कायम करके लोकप्रिय नेता जनरल आंग सान को प्रधान मंत्री बनाया। लेकिन ने विन बर्मी सेना में शामिल हो गए। 1947 तक ब्रिटिश बर्मी सेना में वे कर्नल पद पर थे। 1948 में देश की आज़ादी के समय वे मेजर जनरल बने। 1949 में वे बर्मी सेना के प्रधान सेनापति हुए।

इस प्रकार जनरल ने विन ने देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई में हिस्सा लिया था और देश की आज़ादी के लिए ही हथियार उठाए थे तथा सैनिक अधिकारी बने थे। यही देखकर तो आश्चर्य होता है कि उन्होंने 1962 में सैनिक तानाशाही क्यों कायम की।

14
भारत-बर्मा सम्बन्ध

भारत और बर्मा के सम्बन्ध युगों पुराने हैं। दो हज़ार वर्ष पूर्व बर्मा के दक्षिणी भाग में आन्ध्र के तेलंग लोगों का राज्य था। इतिहासकारों का कहना है कि बर्मा के आदिवासी प्यू लोग भारतीयों के ही वंशज थे। फिर उड़ीसा के लोगों ने जाकर बर्मा में अपने राज्य कायम किए। भारत ने पहले हिन्दू धर्म और फिर बौद्ध धर्म बर्मा को दिया और आज तक बर्मी लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं।

इतिहास में एक-दो बार ऐसे अवसर भी आए जब बर्मी राजाओं ने असम, मणिपुर आदि भारतीय क्षेत्रों पर अपना अधिकार कर लिया। बर्मा के अवा राजवंश ने कुछ समय तक असम में ब्रह्मपुत्र नदी तक के क्षेत्र पर राज्य किया।

19वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में अंग्रेज़ों ने बर्मा पर अधिकार किया और उसे ब्रिटिश भारत का एक प्रान्त बना दिया। 1937 तक बर्मा ब्रिटिश भारत का प्रांत रहा और फिर अलग राज्य हो गया। जब बर्मा भारत का प्रान्त था तब वहां आने-जाने पर प्रतिबन्ध नहीं थे। इसलिए बहुत-से भारतीय वहां जाकर बस गए और अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में वे दिखाई पड़ने लगे। ब्रिटिश सरकार की नौकरियों में तो भारतीयों की संख्या बहुत बड़ी थी। तमिलनाडु और बिहार के गरीब किसानों ने मध्य बर्मा के जंगलों को हरे-भरे

खेतों में परिवर्तित किया और वर्मी लड़कियों से विवाह करके वहीं बस गए। इसीलिए वर्मा के प्रत्येक क्षेत्र में हिन्दू मन्दिर दिखाई पड़ते हैं।

भारत को 1947 में और वर्मा को एक वर्ष बाद 1948 में ब्रिटिश दासता से आज़ादी मिली। आज़ादी मिलने के बाद दोनों देशों में सहयोग बढ़ा। भारत के प्रधान मन्त्री श्री नेहरू तथा वर्मा के प्रधान मंत्री ऊ नू ने मिलकर गुट-निरपेक्ष नीति की नींव डाली और नेहरू तथा ऊ नू इस नीति के आधार-स्तम्भ बन गए। यह सहयोग क्षेत्रीय सम्मेलनों से लेकर राष्ट्र संघ में चला। बांडुंग सम्मेलन में श्री नेहरू और ऊ नू ने विशेष ख्याति पाई। कोलम्बो संगठन में शामिल होकर दोनों देशों का सहयोग आर्थिक क्षेत्र में भी बढ़ा। श्री नेहरू और ऊ नू का सहयोग 1962 तक चला। इसके बाद वर्मा में सैनिक क्रांति हुई और ऊ नू को जेल में डाल दिया गया।

ऊ नू के बाद वर्मा के सर्वेसर्वा जनरल ने विन ने भारत के साथ सहयोग का क्रम जारी रखा, लेकिन उनमें अब उतनी गर्मी नहीं रही। 1962 में जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो वर्मा भी गुट-निरपेक्ष देशों के कोलम्बो सम्मेलन में शामिल हुआ और उसने भारत-चीन समझौता वार्ता के लिए प्रस्ताव रखने में पहल की। लेकिन चीन के रवैये से वर्मा तथा अन्य गुट-निरपेक्ष देशों का यत्न सफल नहीं हुआ।
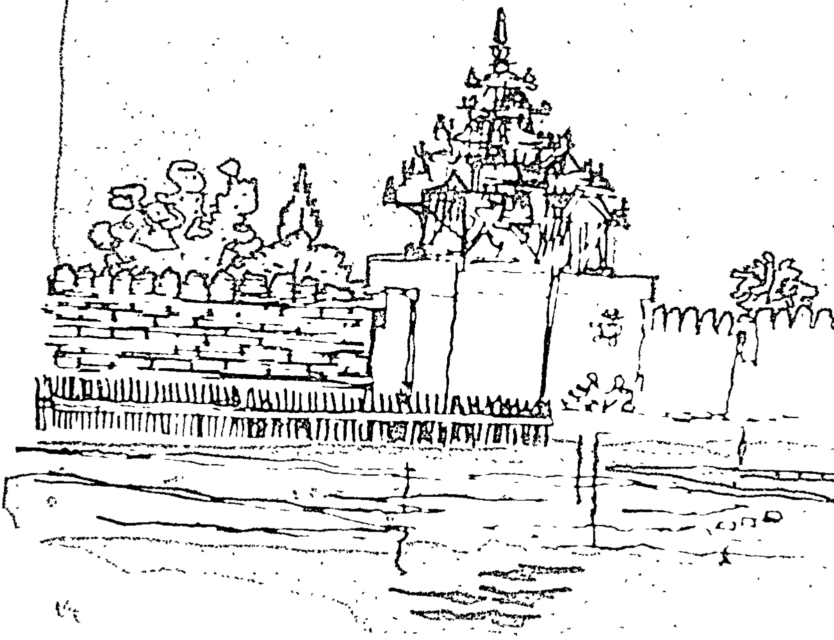
भारत और वर्मा के सहयोग का एक अन्य आधार भी रहा। हर साल वर्मी नेता बौद्ध धर्म के पवित्र क्षेत्रों के दौरे पर भारत आते हैं। इस मौके पर भारत और वर्मा के नेताओं को बातचीत का मौका मिलता है। भूतपूर्व भारतीय प्रधान मन्त्री नेहरू भी कई बार वर्मा की यात्रा कर चुके थे।